

I  
A  
S



P  
C  
S

# आलेख सार

अंक - 8



## संपादकीय Analysis 360°



## एक कदम, सलता की ओर।।।

प्रिय अभ्यर्थियों!

जैसा कि आप जानते हैं, कि जी०एस० वर्ल्ड प्रबंधन पिछले कुछ वर्षों से लगातार आपके अध्ययन सामग्री की गुणवत्ता संवर्धन हेतु सतत प्रयासरत है, जिसके लिए दैनिक स्तर पर अंग्रेजी समाचार पत्रों का सार एवं जीएस वर्ल्ड टीम द्वारा सहायक सामग्री उपलब्ध करायी जाती है। साथ ही साप्ताहिक स्तर पर हिन्दी समाचार पत्रों का सार उपलब्ध कराया जाता था, किंतु सिविल सेवा परीक्षा के बढ़ते स्तर एवं बदलते प्रश्नों को देखते हुए जीएस वर्ल्ड प्रबंधन ने साप्ताहिक समाचार पत्रों के सार के स्थान पर अर्द्धमासिक स्तर पर संपादकीय Analysis 360<sup>o</sup> आरंभ किया है।

**संपादकीय Analysis 360<sup>o</sup> में नया क्या है?**

- इसमें महत्वपूर्ण मुद्दों पर विभिन्न हिन्दी समाचार पत्रों में आए संपादकीय लेखों का सार उपलब्ध कराया जा रहा है।
- इन संपादकीय लेखों को समग्रता प्रदान करने के लिए इनसे जुड़ी सभी बेसिक अवधारणाओं को जीएस वर्ल्ड टीम द्वारा उपलब्ध कराया जा रहा है।
- इन मुद्दों से संबंधित 2013 से अब तक सिविल सेवा परीक्षा में पूछे गए प्रारंभिक एवं मुख्य परीक्षा के प्रश्नों को भी नीचे दिया गया है, जिससे अभ्यर्थी उस मुद्दे से जुड़े प्रश्नों को समझ सकें।
- इन मुद्दों से संबंधित संभावित प्रश्नों को भी इन आलेखों के साथ दिया गया है, जिसका अभ्यास अभ्यर्थी स्वयं कर संस्थान में अपने उत्तर की जांच भी करा सकते हैं।

जीएस वर्ल्ड प्रबंधन आपके उज्वल एवं सफल भविष्य के लिए प्रतिबद्ध है।।।

Committed To Excellence

नीरज सिंह  
(प्रबंध निदेशक, जीएस वर्ल्ड)

To be a great champion you  
must believe you are the best. If  
you're not, pretend you are.

disha.woodcutters.org

## विषय-सूची

1. 15वाँ वित्त आयोग और संसाधनों का बँटवारा 4
2. सामाजिक विफलता 8
3. मृत्युदण्ड : एक प्रश्न 13
4. मानवीयता : रासायनिक हमला 17
5. अफ़स़ा का अन्त : एक सही निर्णय 21
6. “महिलाओं की सैलरी में जेंडर बाधा” 25
7. रिश्तों को नई दिशा देने का प्रयास 27
8. न्यायिक सुधार का अधूरा एजेंडा, निचली अदालत के ढांचे को सुधारने  
की पहल जरूरी 34
9. न्यायपालिका पर ओछी राजनीति 37



# 15वाँ वित्त आयोग और संसाधनों का बँटवारा

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-3 ( भारतीय अर्थव्यवस्था ) से संबंधित है।

हाल ही में 15वें वित्त आयोग के विचारार्थ विषय ने 'सहकारी संघवाद की ओर बढ़ाए गए सकारात्मक कदमों पर संशय पैदा कर दिया गया है। जिसमें केन्द्र-राज्यों के मध्य संसाधनों के बँटवारे के लिए 1971 को जनगणना के स्थान पर 2011 की जनगणना को आधार बनाने की बात की गई है। इस संबंधित मुद्दे से हिन्दी समाचार पत्रों 'बिजनेस स्टैंडर्ड', 'जनसत्ता' और 'हिन्दुस्तान' में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।

## संसाधनों के वितरण की मुश्किलों से भरी दुनिया ( बिजनेस स्टैंडर्ड )

पंद्रहवें वित्त आयोग को अनगिनत समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। 'सहकारी संघवाद' की तरफ बढ़ाए गए कुछ सकारात्मक कदमों के बाद वित्त आयोग के समक्ष पीछे जाने का जोखिम मंडरा रहा है। 14वें वित्त आयोग ने राज्यों के बीच वित्त के बँटवारे का जो फॉर्मूला सुझाया था उसे सरकार ने जल्द और पूरी तरह स्वीकार कर लिया था। उससे सहकारी संघवाद की तरफ सकारात्मक कदम बढ़ाने के संकेत मिले थे। राज्यों को निर्देश देने वाली संस्था माने जाने वाले योजना आयोग का वजूद खत्म हो जाने और उसके स्थान पर नीति आयोग के गठन को भी सहकारी संघवाद की दिशा में एक और सकारात्मक कदम के तौर पर देखा गया था। उसके बाद वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) के संचालन के लिए गठित जीएसटी परिषद ने भी सहकारिता की भावना को काफी मजबूती देने का काम किया।

लेकिन 15वें वित्त आयोग के विचारार्थ विषय ने सहकारिता की उस भावना पर ही संदेह पैदा कर दिया है। सबसे ज्यादा विवादास्पद मसला संसाधनों के बँटवारे का आधार 1971 के बजाय 2011 की जनगणना को बनाने का निर्देश है। पहली नजर में तो जनगणना के नवीनतम आंकड़ों का इस्तेमाल तर्कसंगत लगता है। दरअसल 14वें वित्त आयोग ने अपनी गणनाओं में 2011 की जनगणना के कुछ आंकड़ों का इस्तेमाल कर इसकी बुनियाद रख दी थी। लेकिन राज्यों के बीच संसाधनों के बँटवारे का समूचा आधार 2011 की जनगणना को ही बनाए जाने से दक्षिणी राज्यों में अधिक चिंता देखी जा रही है। उन राज्यों में उत्तरी राज्यों की तुलना में जनसंख्या वृद्धि दर कम रही है। उत्तर-पूर्वी राज्यों और पश्चिम बंगाल में भी जनसंख्या वृद्धि दर में उल्लेखनीय गिरावट देखने को मिली है। इस वजह से उनकी यह शिकायत काफी हद तक वाजिब लगती है कि इस तरह उन्हें तीव्र विकास और बेहतर शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं के चलते जनसंख्या वृद्धि दर में कमी लाने की कीमत चुकाने को कहा जा रहा है।

तीव्र एवं धीमी जनसंख्या वृद्धि दर वाले राज्यों के बीच व्याप्त तनाव को कम करने के लिए कुछ रचनात्मक विकल्पों के बारे में विचार किया जा सकता है। एक विकल्प तो यह है कि जनसंख्या वृद्धि दर में कमी लाने वाले राज्यों को कुछ क्रेडिट दिया जाए। इससे

## वित्त आयोग के विचारार्थ मुद्दों से जन्मा विवाद ( जनसत्ता )

वित्तीय संसाधनों के बँटवारे पर सुझाव देने के लिए गठित 15वें वित्त आयोग के विचार के लिए निर्धारित विषय (टीओआर) को लेकर देश भर में चर्चाओं का बाजार गर्म है। सर्वाधिक चर्चा का मुद्दा 1971 के बजाय 2011 की जनगणना को आधार बनाने से संबंधित है। आयोग केंद्र एवं राज्यों के बीच संसाधनों के बँटवारे के लिए अब तक 1971 की जनगणना को आधार बनाता रहा है लेकिन इस बार 2011 की जनगणना को आधार बनाने की बात कही जा रही है। तेरहवें वित्त आयोग में मेरे साथ काम कर चुके वी. भास्कर का कहना है कि 2011 की जनगणना को संसाधन वितरण का आधार बनाने से दक्षिण भारत के राज्यों को नुकसान उठाना पड़ेगा। हालांकि मेरा मानना है कि इस अनुमान में अधिक दम नहीं है। एक राज्य की हिस्सेदारी पर असर उस मापदंड के भारांक और आधार से तय होता है। अगर जनसंख्या दर को काबू में कर चुके राज्यों के प्रयासों को स्वीकृति देने के लिए उस मापदंड को कम अहमियत दी गई है तो मापदंड के आधार में किए गए बदलाव के असर को निष्प्रभावी और प्रत्यावर्तित भी किया जा सकता है। दसवें वित्त आयोग के समय से ही संसाधनों के क्षेत्रीय वितरण में जनसंख्या को दिया जाने वाला भारांक 10 से लेकर 25 फीसदी तक रहा है। अगर 15वाँ वित्त आयोग जनसंख्या भारांक को निचले दायरे पर रखने का फैसला करता है तो पूरा विवाद ही अप्रासंगिक हो जाएगा।

दसवें वित्त आयोग से ही क्षेत्रीय वितरण फॉर्मूले में सबसे अहम अवयव आय विभेद मापदंड रहा है। किसी राज्य की प्रति व्यक्ति आय के प्रतिकूल उपायों ने ऐतिहासिक रूप से इस बात को साबित भी किया है। किसी राज्य की प्रति व्यक्ति आय जितनी कम होगी, उसकी हिस्सेदारी उतनी ही अधिक होगी। दसवें वित्त आयोग से ही इस मापदंड को 50-60 फीसदी भारांक दिया जाता रहा है। हमें ध्यान रखना होगा कि किसी भी राज्य ने प्रति व्यक्ति आय को अधिक भारांक दिए जाने को लेकर कोई आपत्ति नहीं जताई है। इससे पता चलता है कि हमारे राज्यों के बीच भाईचारे और जिम्मेदारी का अहसास रहा है। राज्य यह मानते हैं कि इस तरह की प्रगतिवादिता वांछनीय है और उसे विभाजनकारी विवाद का विषय नहीं बनाना चाहिए।



वे राज्य भी जनसंख्या नियंत्रण के लिए प्रोत्साहित होंगे जहां प्रजनन दर अब भी अधिक है। दूसरा विकल्प यह है कि अपनी सीमा के भीतर अधिक प्रवासी श्रमिकों वाले राज्यों को क्रेडिट दिए जाएं। यह एक गलत धारणा है कि अंतरराज्यीय प्रवास की तुलना में अंतःराज्यीय प्रवास काफी अधिक होता है। वर्ष 2016-17 की आर्थिक समीक्षा की मानें तो अंतरराज्यीय प्रवास को बहुत ही कमतर करके आंका जाता है। वर्ष 2001-2011 के दशक में करीब छह करोड़ लोगों ने दूसरे राज्य में प्रवास किया और यह संख्या तेजी से बढ़ रही है। ऐसे में 1971 से 2001 के बीच अंदरूनी प्रवास वाले राज्यों को क्रेडिट देने का तरीका अपनाया जा सकता है। इससे उन राज्यों को कुछ प्रोत्साहन मिलेगा जहां दूसरे राज्यों से प्रवासी आ रहे हैं। इस अतिरिक्त संसाधन से वे राज्य प्रवासियों को बेहतर सुविधाएं मुहैया करा सकते हैं।

आयोग के विचारार्थ विषय से पैदा दूसरी समस्या आयोग को किया गया वह अनुरोध है जिसमें 14वें वित्त आयोग की सिफारिशों से बढ़े संसाधन वितरण के बोझ का केंद्र सरकार के वित्त पर पड़े प्रभाव का आकलन करने को कहा गया है। न्यू इंडिया 2022 और राष्ट्रीय विकास कार्यक्रम की मौजूदा योजनाओं के संदर्भ में केंद्र पर पड़ने वाले वित्तीय बोझ की भी समीक्षा वित्त आयोग को करनी है। क्या इससे यह अहसास होता है कि सरकार पहले स्वीकृत किए जा चुके संसाधन वितरण पर पुनर्विचार कर रही है? ब्राजील और इंडोनेशिया जैसे कुछ देशों ने कुछ हद तक विकेंद्रीकरण को बहाल करने की कोशिशें की हैं।

भारत में इस तरह का रवैया अपनाना अनुत्पादक होगा क्योंकि 2014 के संसाधन वितरण से राज्यों को आवंटित कुल फंड में कोई बदलाव नहीं हुआ था, केवल बंटवारे का तरीका बदला था। जहां पहले फंड को केंद्र की प्रमुख योजनाओं से जोड़ा गया था वहीं अब उसे बिना किसी बंधन के राज्यों को सौंप दिया जाता है ताकि वे अपने हिसाब से उसे खर्च कर सकें। 15वें वित्त आयोग के विचारार्थ विषयों में जिस तरह न्यू इंडिया 2022 अभियान का जिक्र है वह इसे एक बार फिर केंद्र-प्रायोजित योजनाओं की तरफ जाने का इशारा करता है। यानी नई बोटल में पुरानी शराब परोसने की तैयारी है।

तीसरी चिंता, वित्त आयोग से यह अनुरोध किया गया है कि वह 'लोकलुभावन' उपायों पर किए जाने वाले व्यय पर नियंत्रण का परीक्षण करे। बिहार और पंजाब जैसे राज्यों में बढ़ते राजकोषीय घाटे से जन्मी चिंताओं को देखते हुए राज्यों का जरूरत से अधिक खर्च करना निश्चित रूप से बड़ी चिंता का विषय है। हालांकि आयोग के विचारार्थ जो मुद्दा दिया गया है उसमें लोकलुभावन कदमों की कोई व्याख्या नहीं की गई है लिहाजा यह काफी हद तक व्यक्तिपरक ही होगा। कौन फैसला करेगा कि अमुक कार्यक्रम लोकलुभावन है या वास्तव में उसकी आवश्यकता है? इसके साथ ही केंद्रीय बजट में मौजूद लोकलुभावन प्रावधानों के बारे में क्या रुख होगा? क्या आयोग उसके बारे में भी विचार करेगा? पहले भी जब राज्यों को वित्त व्यय करने के तरीके बताने की कोशिश की गई है तो उसके नतीजे अच्छे नहीं रहे हैं। सहकारी संघवाद की भावना के तहत राज्य सरकारों को अपनी पसंद के मुताबिक ही व्यय करने की छूट दी जानी चाहिए ताकि मतदाता उसके प्रदर्शन के आधार पर उसका मूल्यांकन कर सकें।

ऐसी सकारात्मक भावना के बीच 15वें वित्त आयोग के टीओआर का अंदाज अगर भाईचारे वाला ही रहता तो बेहतर होता। पिछले वित्त आयोगों के विचार के लिए निर्धारित मुद्दों में केंद्र सरकार की अपनी व्यय प्रतिबद्धताएं पूरा करने के लिए मांगे गए संसाधन और राज्य सरकारों की व्यय प्रतिबद्धताओं के लिए जरूरी संसाधनों का वितरण शामिल रहता था। 15वें वित्त आयोग के टीओआर में भी ये मुद्दे शामिल हैं और काफी विस्तार से उनका जिक्र किया गया है। लेकिन उसके साथ अनावश्यक रूप से एक विवादास्पद बिंदु भी जोड़ दिया गया है जिसके मुताबिक, '14वें वित्त आयोग के सुझावों के अनुरूप राज्यों को अधिक संसाधन वितरित किए जाने पर केंद्र की राजकोषीय स्थिति पर पड़े असर पर भी गौर करना है'। जब वित्त आयोग समूचे वित्तीय परिदृश्य का विश्लेषण करता है तो यह अंतर्निहित होता है कि वह पिछली अनुशंसाओं के असर को भी ध्यान में रखेगा। पिछले वित्त आयोग अपनी सिफारिशों को सही ठहराने के लिए इस बारे में विस्तार से चर्चा करते रहे हैं। इस तरह टीओआर में यह बिंदु अनावश्यक जोड़ा गया है। जीएसटी से होने वाले नुकसान पर राज्यों को मुआवजा देने के प्रावधान की समीक्षा करने और कुछ उपकरणों को खत्म करने के बारे में सुझाव देने का जो काम आयोग को सौंपा गया है वह भी व्यर्थ ही लग रहा है। प्रत्यक्ष करों पर उपकर लगाने का काम केंद्र ही करता है।

टीओआर में शामिल एकदम नया खंड राज्यों के गुस्से का सबब बन रहा है। इस खंड में आयोग से 'राज्यों को प्रदर्शन-आधारित प्रोत्साहन उपायों' के बारे में सुझाव देने को कहा गया है। केवल राज्यों के लिए निर्धारित इस खास बिंदु में अगर गैरजरूरी ब्योरे नहीं दिए गए होते तो यह उतने विवाद का विषय नहीं बनता। इसमें प्रगति के कई संकेतकों का जिक्र है जिन पर राज्यों को खरा उतरना होगा। 'भारत सरकार की प्रमुख योजनाओं के क्रियान्वयन में उपलब्धियां' और 'खुले में शौच पर रोक के लिए लोगों की आदत बदलने की कोशिश' जैसे कुछ संकेतकों के चलते मानदंड संबंधी पूर्वाग्रहों के आरोप लग रहे हैं। सवाल उठता है कि केंद्रीय योजनाओं के क्रियान्वयन को किसी राज्य की प्रगति का संकेतक क्यों माना जाना चाहिए? इसी तरह स्वास्थ्य या शिक्षा जैसे राज्य सूची के विषय में मिली सफलता संकेतक क्यों न बनाई जाए? प्रत्यक्ष लाभ अंतरण योजनाओं का लागू होना और डिजिटल अर्थव्यवस्था के प्रोत्साहन जैसे वैचारिक बिंदु भी हैं। कुछ बिंदु तो आलोचनात्मक हैं, मसलन; कारोबारी सुगमता की दिशा में प्रगति और श्रम प्रधानता वाली प्रगति को प्रोत्साहन। टीओआर में इस तरह के विशिष्ट बिंदुओं को शामिल करने के पीछे मुझे कोई ठोस कारण नहीं नजर आ रहा है। पिछले आयोगों की तरह इस तरह के मामले आयोग के निर्णय के लिए छोड़ दिए जाने चाहिए थे। आखिर आजादी के बाद गठित 14 वित्त आयोगों ने इस काम को बखूबी अंजाम दिया है।

इस तरह के हालात निश्चित रूप से 15वें वित्त आयोग के काम को मुश्किल बना रहे हैं लेकिन वित्तीय संसाधनों के क्षैतिज एवं ऊर्ध्वाधर वितरण के बारे में सुझाव देने का मौलिक कार्य तो वह संविधान से हासिल अपने प्राधिकार से ही पूरा करेगा। वित्त आयोग

आखिरकार, वित्त आयोग को कारोबारी सुगमता को बढ़ावा देने के तरीके सुझाने को भी कहा गया है। सुगमता सूचकांक के साथ कई समस्याएं जुड़ी हुई हैं क्योंकि इसमें हमेशा कारोबारी गतिविधियों पर कम-से-कम नियमन को तरजीह दी जाती है। जहां निवेश आकर्षित करने के लिए राज्यों के बीच प्रतिस्पर्धा का होना स्वागत-योग्य है वहीं सभी तरह के नियमन को खत्म करने की राज्यों के बीच होड़ लगाना भारत के व्यापक हित में नहीं है। व्यवसाय एवं उद्योग जगत के सर्वेक्षणों पर अधिक सतर्क नजर से पता चलता है कि कारोबारी सुगमता सूचकांक को सुधारने से बेहतर है कारोबार की राह में आ रही अड़चनों को दुरुस्त करना। ये सूचकांक देश के कुछ बड़े शहरों में वकीलों और व्यवसाय सलाहकार ही तैयार करते हैं।

मुझे उम्मीद है कि वित्त आयोग के अनुभवी एवं बुद्धिमान सदस्य इन समस्याओं का समाधान निकाल लेंगे और सहकारी संघवाद की भावना को पुष्ट करने में मदद करेंगे। समस्याओं से भरी इस खदान से बच निकलने की रचनात्मक सोच वर्ष 2026 की बड़ी लड़ाई के लिए जमीन भी तैयार करेगी। उस समय राजनीतिक प्रतिनिधित्व का मसला भी सुलझाने की जरूरत पड़ेगी। फिलहाल राजनीतिक प्रतिनिधित्व का आधार 1971 की जनगणना ही है।

को संविधान ने यह अधिकार दिया है कि वह क्षैतिज एवं ऊर्ध्वाधर वितरण के लिए जरूरी समझे जाने वाले मापदंडों के लिए अलग भारांक निर्धारित कर सके। इस तरह आयोग केंद्र एवं राज्यों के लिए राजकोषीय मजबूती का रोडमैप भी निर्धारित कर देगा। यह दोनों स्तरों पर और अलग-अलग राज्यों की आनुपातिक हिस्सेदारी से संबंधित सुझाव भी दे सकता है। वित्त आयोग को मिला संवैधानिक दर्जा उसे समुचित स्वायत्तता प्रदान करता है।

मुझे पूरा यकीन है कि 15वां वित्त आयोग पिछले आयोगों की तरह अपने संवैधानिक दायित्वों को पूरी सक्षमता से पूरा कर पाएगा। यह महत्वपूर्ण है कि राज्य इस बात को स्वीकार करें कि आयोग के विचार के लिए निर्धारित विषयों को लेकर खड़ा हुआ विवाद काफी हद तक खराब ढंग से तैयार मसौदे की उपज है और संवैधानिक जिम्मेदारियों के संदर्भ में यह पिछले आयोगों की तरह ही है। ऐसे में 15वें वित्त आयोग पर अपना दायित्व पूरा करने की क्षमता पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है। राज्यों से मेरा अनुरोध है कि इस बेहद अहम संवैधानिक संस्था में अपना विश्वास बनाए रखें।

## निराधार भय ( हिन्दुस्तान )

क्या दक्षिण भारत कुछ ज्यादा ही विरोध प्रदर्शन करता है? दक्षिण भारत के राज्यों के मुख्यमंत्री और मंत्री एकजुट होकर हालिया वित्त आयोग की शर्तों के खिलाफ विरोध प्रदर्शन करने जा रहे हैं। वित्त आयोग हर पांच साल में ऐसी अनुशंसा देता है कि केंद्रीय कर राजस्व का कितना हिस्सा राज्यों के साथ साझा किया जाना चाहिए और प्रत्येक राज्य की कितनी हिस्सेदारी होनी चाहिए? नए आयोग से कहा गया है कि वह अपना निर्णय 2011 की जनगणना को ध्यान में रखकर ले सकता है। जबकि इससे पहले तमाम आयोग की रिपोर्ट सन 1971 की जनगणना पर आधारित थी। पिछले आयोग ने सन 1971 और 2011 दोनों जनगणनाओं को ध्यान में रखा था।

इस बदलाव से थोड़ी नाराजगी पैदा हुई है क्योंकि दक्षिण के राज्यों को तिहरे संकट की आशंका है। पहला, आबादी पर नियंत्रण में उनका रिकॉर्ड बेहतर है इसलिए अगर 2011 की जनगणना का प्रयोग किया गया तो केंद्र से मिलने वाले कर राजस्व में उनकी हिस्सेदारी प्रभावित होगी। दूसरी बात, उनको पहले ही नुकसान हो चुका है क्योंकि गरीब राज्यों पर ज्यादा ध्यान दिया जा रहा है। तीसरा, वस्तु एवं सेवा कर जो कि एक खपत कर है, वह भी अनुत्पादक यानी गरीब राज्यों को अधिक राजस्व प्रदान करेगा। एक लेखक ने तो यहां तक कह दिया कि केरल और तमिलनाडु जैसे राज्यों के लिए तो भारतीय गणराज्य के अधीन फलना-फूलना बहुत मुश्किल हो गया है।

कुछ हद तक यह जरूरी भी है। बिहार को केंद्रीय राजस्व में उसकी आबादी के हिसाब से सुनिश्चित हिस्सेदारी से एक फीसदी अधिक हिस्सा मिलता है। अगर बात देश के सबसे गरीब राज्य की हो रही हो तो इतने से कोई बहुत बड़ा फर्क नहीं पड़ता। इसके अलावा हर वित्त आयोग से कुछ राज्य लाभान्वित होते हैं तो कुछ को नुकसान होता है। 11वें और 14वें आयोग के दौरान दक्षिण के तीन राज्यों (तत्कालीन संयुक्त आंध्र प्रदेश अपवाद था) को केंद्रीय कर हिस्सेदारी में बहुत नुकसान उठाना पड़ा। लेकिन तब उत्तर और पूर्वी भारत के राज्यों उत्तर प्रदेश, एकीकृत बिहार, पश्चिम बंगाल और ओडिशा को भी नुकसान उठाना पड़ा था। पश्चिम के राज्यों महाराष्ट्र और गुजरात को इसका फायदा मिला। जाहिर है उत्तर बनाम दक्षिण के निष्कर्ष निकालने की हड़बड़ी नहीं करनी चाहिए। खासतौर पर तब जबकि आयोग से कहा गया है कि वह राजकोषीय प्रदर्शन और आबादी नियंत्रण को ध्यान में रखे।

एक आशंका यह भी है कि 2026 में जब राज्यवार लोकसभा सीटों के आवंटन की समीक्षा की जाएगी तो सन 2021 की जनगणना के आंकड़ों का इस्तेमाल होने से दक्षिण भारत के राज्यों में सीटों या लोकसभा में कुल सीटों में हिस्सेदारी में कमी आ सकती है। यह विचार भी भय फैलाने वाला है। 2014 को देखें तो अधिकांश राज्यों में प्रति 14 से 15 लाख लोगों पर एक लोकसभा सीट है। इसका राष्ट्रीय औसत 15 लाख से कुछ ज्यादा है। पूर्वोत्तर के राज्यों को छोड़ दें तो उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में यह 17.4 लाख और केरल में 12 लाख है।

सन 2026 में आबादी के मुताबिक सीटों का बंटवारा होने पर केरल की लोकसभा सीट 20 से घटकर 15 हो सकती है। इसे गलत कहा जा सकता है क्योंकि यह तो बेहतर प्रदर्शन करने वाले को दंडित करना हुआ। परंतु मौजूदा हकीकत भी ठीक नहीं है। प्रति 36 लाख मतदाताओं पर केरल को तीन सीट जबकि उत्तर प्रदेश को दो सीट दी जाती है। कर्नाटक में प्रति सीट मतदाता बिहार से कुछ अधिक हैं। हिमाचल प्रदेश तथा जम्मू कश्मीर में केरल के समान ही 12 लाख का आंकड़ा है। गोवा में प्रति लोकसभा सीट बमुश्किल 5 लाख का औसत है। समग्रता से देखें तो लोकसभा में प्रतिनिधित्व में कोई बड़ा बदलाव आने की आशंका कम ही है।

### क्या है विवाद?

- गौरतलब है कि चौदहवें वित्त आयोग के टर्म्स ऑफ रेफरेंस में जनसंख्या के आंकड़ों को इस्तेमाल करने का कोई निर्देश नहीं दिया गया था। इसके बावजूद राज्यों की जरूरतों का सटीक आंकलन करने के लिए 14वें वित्त आयोग ने 2011 की जनगणना के आंकड़ों का इस्तेमाल किया और उसकी तुलना 1971 की जनगणना के आंकड़ों से की।
- ऐसे में जो नतीजा मिला उसके आधार पर 14 आयोग ने 2011 की जनसंख्या को 10 फीसदी का वेटेज देते हुए राज्यों को केंद्रीय राजस्व का 42 फीसदी धन आवंटित करने का काम किया। यह पूर्व में राज्यों को आवंटित सबसे अधिक राजस्व था।
- अब 15वें वित्त आयोग के टर्म्स ऑफ रेफरेंस में केन्द्र सरकार ने नया निर्देश दिया है कि राज्यों को राजस्व का आवंटन करने के लिए ऐसे राज्यों का भी संज्ञान लिया जाए जिन्होंने जनसंख्या पर लगाम लगाने में अच्छी पहल की है। सरकार ने ऐसे राज्यों को इस काम के लिए अधिक आवंटन का निर्देश दिया है जिससे बाकी राज्यों को भी जनसंख्या पर लगाम लगाने के लिए प्रोत्साहित किया जा सके।

### वित्त आयोग द्वारा राज्यों में राजस्व का आवंटन

- केन्द्र सरकार अपने राजस्व का एक बड़ा हिस्सा राज्यों में बांटता है, जिससे जिन राज्यों के पास न्यूनतम जीवन स्तर बनाने के लिए पर्याप्त संसाधन नहीं हैं, वह केंद्रीय राजस्व से यह काम कर सके। लिहाजा केन्द्र सरकार के राजस्व का यह बंटवारा करने के लिए केन्द्र सरकार हर 5वें वर्ष वित्त आयोग का गठन करती है।
- वित्त आयोग इस बंटवारे के लिए राज्यों की जरूरत का आंकलन करती है और सटीक आंकलन के लिए वह कई कसौटियों का इस्तेमाल करती है। इनमें राज्य की जनसंख्या और राज्य की कमाई दो अहम कसौटियाँ हैं। जहाँ जनसंख्या से राज्य की जरूरत निर्धारित की जाती है वहीं राज्य की जीडीपी से राज्य में गरीबी का आंकलन किया जाता है।
- इन दोनों कसौटियों के आधार पर ज्यादा गरीबी और अधिक जनसंख्या वाले राज्यों को ज्यादा से ज्यादा संसाधन देने की कोशिश की जाती है, जिससे वह राज्य शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्य सेवाओं को अपने नागरिकों तक पहुंचा सके।

### केंद्रीय वित्त आयोग का गठन

- संविधान के अनुच्छेद 280 के अनुसार, प्रत्येक 5 वर्ष में या आवश्यकता पड़ने पर एक केंद्रीय वित्त आयोग का गठन देश के राष्ट्रपति द्वारा किया जाएगा। संसद विधि द्वारा आयोग के सदस्यों की अर्हता निर्धारित करेगी। केंद्रीय वित्त आयोग के निम्नलिखित प्रमुख कार्य हैं- केंद्र व राज्यों के बीच करों का बँटवारा करना।
- भारत की संचित निधि में से राज्यों हेतु अनुदान के लिये सिफारिश करना।
- केंद्र व राज्यों के बीच वित्तीय संबंधों से जुड़े अन्य किसी मामले की देख-रेख।

### 15वें केंद्रीय वित्त आयोग के समक्ष चुनौतियाँ

- देश के कुछ राज्यों में पर्याप्त मात्रा में निजी निवेश होता है, वहीं कुछ राज्यों में निजी निवेश की कमी है। निजी निवेश के इस असंतुलित वितरण के कारण राज्यों के बीच असमानता बढ़ रही है। नए आयोग को इस बढ़ती असमानता पर गंभीरता से विचार करना होगा।
- विद्युत-वितरण कंपनियों के आर्थिक पुनरुद्धार के लिये केंद्र द्वारा शुरू की गई "उदय" योजना का भार राज्यों की वित्तीय स्थिति पर पड़ रहा है। आयोग को इस हेतु भी उपाय करने होंगे।
- देश के कई राज्यों के समक्ष आज सूखा, बाढ़, भूस्खलन, चक्रवात जैसी कई प्राकृतिक आपदाओं की चुनौतियाँ हैं। नए आयोग को आपदा प्रबंधन के लिये राज्यों को समुचित कोष उपलब्ध कराने का प्रयत्न करना होगा।
- समावेशी विकास के लक्ष्यों को पूरा करने और जलवायु-परिवर्तन से निपटने की सरकारी प्रतिबद्धताओं की पूर्ति हेतु एक सुसंगत वित्तीय रणनीति बनाने पर ध्यान देना होगा।
- राज्यों के बीच करों के क्षेत्रीय वितरण के लिये अब तक लगभग 50 वर्ष पुरानी 1971 की जनगणना के आँकड़ों को आधार बनाया जाता रहा है। आयोग द्वारा अब 2011 की जनगणना के आँकड़ों को आधार रूप में लिया जा सकता है, परंतु दक्षिणी और पश्चिमी राज्यों को इससे होने वाले नुकसान का ध्यान भी आयोग को रखना होगा।

### संभावित प्रश्न

प्रश्न. केंद्रीय वित्त आयोग की संवैधानिक स्थिति व कार्य को स्पष्ट करते हुए, 15वें वित्त आयोग के समक्ष आने वाली चुनौतियों और इसके निदान हेतु उपाय सुझाये। (250 शब्द)



# सामाजिक विफलता

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-2 (शासन व्यवस्था) से संबंधित है।

हाल ही में देश में घटित दुष्कर्म जैसी घटनाओं ने हमारी मानवता और इंसानियत को तार-तार कर दिया है। जिसकी वजह से भारतीय समाज की दिशा और दशा दोनों पर प्रश्न-चिन्ह खड़े हो गए हैं। इस मुद्दे से संबंधित हिन्दी समाचार पत्रों 'दैनिक ट्रिब्यून', 'अमर उजाला', 'दैनिक जागरण', 'जनसत्ता' तथा नवभारत टाइम्स में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।

## कठुआ की टीस (दैनिक ट्रिब्यून)

देश के समक्ष दरपेश सबसे बड़ी चुनौती से मुकाबले को राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद ने समाज को जिम्मेदारी का एहसास कराया है। उन्होंने श्री माता वैष्णो देवी विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में कठुआ मामले में देश की चिंताओं को गहरे तक महसूस करते हुए आत्मचिंतन की बात कही। उन्होंने कहा कि ध्यान देने की जरूरत है कि हम कैसा समाज विकसित कर रहे हैं। यह इस बात का संकेत है कि समस्या को राजनीति-धर्म के नजरिये से न देख व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखा जाये। सामाजिक विद्रूपताओं का समाधान भी समाज को ही निकालना है, जिसमें हमारे बच्चे सुरक्षित महसूस करें। देश का प्रथम नागरिक होने के नाते उनकी संवेदनशीलता और चिंताओं से सहमत हुआ जा सकता है। इस दुखद घटना पर उसी राज्य के मंच से चिंता जाहिर करने और इससे बचाव के मुद्दों पर विमर्श के अलग मायने हैं। राष्ट्रपति की इस बात से सहमत हुआ जा सकता है कि शिक्षा सामाजिक बदलाव में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

राष्ट्रपति की इस बात का तार्किक आधार है कि बच्चों को हमें बेहतर माहौल में पालना-पोसना है। जब वे बच्चों के चेहरे की मुस्कान को दुनिया की सबसे खूबसूरत चीज बताते हैं तो वे फूल से बच्चों के लिये बेहतर व सुरक्षित समाज रचने का आह्वान कर रहे होते हैं, जिसमें बच्चों की वर्तमान खुशी का जिक्र होता है तो भविष्य के परिपक्व नागरिक बनने की प्रक्रिया का जिक्र भी। उनके संबोधन का निष्कर्ष यह भी है कि बच्चियों की दुनिया सुरक्षित बनाने में जितनी भूमिका पुलिस व प्रशासन की है, उतनी भूमिका समाज की भी है। जब हम विवेकशील और जिम्मेदार समाज का निर्माण करेंगे तो राजनीति, क्षेत्रीयता व धार्मिक संकीर्णताएं किसी अपराधी का बचाव करती नजर नहीं आएंगी। जिसके चलते कठुआ की घटना के बाद दुनिया में भारत की प्रतिष्ठा को आंच आई। यहां तक कि संयुक्त राष्ट्र के महासचिव को कठुआ कांड पर टिप्पणी व्यक्त करने का मौका मिला। दरअसल, हमें ऐसा समाज रचना है, जिसमें संवैधानिक प्रावधानों के अनुरूप हर व्यक्ति को बराबरी, स्वतंत्रता और न्याय के अधिकार मिलें। जिससे तार्किक व्याख्या के आधार पर भयमुक्त समाज की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हो सके। निश्चित रूप से कठुआ जैसी घटनाएं हमारी सामूहिक चेतना को बंधक नहीं बना सकतीं।

## हमारी इंसानियत का क्या होगा? (अमर उजाला)

पिछले पंद्रह दिनों में रोज कोई न कोई ऐसी खबर छपी, जिसने मानस को झकझोर कर रख दिया है। उन्नाव में शासक दल के एक विधायक पर बलात्कार का आरोप दर्ज कराने की कोशिश में एक नाबालिग लड़की महीनों भटकती है। फिर वह मुख्यमंत्री आवास के सामने खुद को जिंदा जलाने का प्रयास करती है। उसकी शिकायत फिर भी दर्ज नहीं होती। उसके पिता के खिलाफ विधायक अपने प्रभाव से झुठे मुकदमे दर्ज करवा लेता है और कचहरी से उसे मारते हुए जेल घसीटकर ले जाया जाता है। कथित मारपीट में विधायक के भाई भी शामिल हैं। लड़की के पिता की मौत के बाद विधायक के भाई गिरफ्तार होते हैं, पर बलात्कार का मामला वहीं का वहीं रह जाता है। जनता और मीडिया के कोलाहल के बीच राज्य सरकार मामले को सीबीआई को सौंपती है। इस बीच उच्च न्यायालय हस्तक्षेप करते हुए कहता है कि प्रदेश में कानून-व्यवस्था ढह चुकी है, और दूसरे दिन विधायक की गिरफ्तारी का आदेश दिया जाता है। तब जाकर उसे गिरफ्तार किया जाता है।

पर बड़े सवाल रह जाते हैं। पीड़िता का परिवार बहुत गरीब है और अब कमाने वाला भी मर चुका है। सरकार अपनी तरफ से पुनर्वास और मुआवजे की बात नहीं कर रही। सर्वोच्च न्यायालय कई बार निर्देश दे चुका है कि बलात्कार पीड़ितों को राज्य सरकारों की ओर से मुआवजा मिलना चाहिए। पिछली सरकार ने इसका कुछ हद तक पालन किया और दो लाख रुपये मुआवजे की घोषणा की, जो बहुत कम थी, पर मौजूदा सरकार इस पर मौन है, जबकि विधानसभा में सरकार ने ही माना है कि उसके एक साल के शासन में पिछली सरकार के आखिरी वर्ष से 761 अधिक बलात्कार, 3,400 से अधिक अपहरण और दहेज मौतों की 200 अधिक घटनाएं घटीं। पर न फास्ट ट्रैक कोर्ट स्थापित हुए, न बलात्कारियों के मन में भय पैदा किया गया।

उत्तर प्रदेश सरकार पर उच्च न्यायालय की टिप्पणी का कोई असर नहीं दिख रहा। अपराध रोकने के लिए किनके इन्काउंटर हो रहे हैं? अभी एक पुलिस इंस्पेक्टर को इसलिए बर्खास्त किया गया, क्योंकि वह किसी से कह रहा था कि उसका इन्काउंटर होने वाला है, खुद बचाने के लिए उसे भाजपा के विधायक और नेता को 'मैनेज' करना चाहिए। सरकार उन अपराधियों के खिलाफ संगीन मामलों को समाप्त करने की पहल कर रही है, जो शासक दल के करीब हैं।

## कानून के साथ समाज भी दिखाए सक्रियता, दुष्कर्म

### सामाजिक विफलता (दैनिक जागरण)

दुष्कर्म दंडनीय ही नहीं होते। वे समाज के लिए पीड़ादायक होते हैं। वे राष्ट्र के लिए लज्जा और गहन व्यथा का विषय भी होते हैं। प्रधानमंत्री नरेंद्र भाई मोदी ने देश के बाहर लंदन में भी इन घटनाओं को लज्जाजनक बताया है। वह देश लौटे, उसी दिन मंत्रिपरिषद बैठी जिसने 'क्रिमिनल लॉ (संशोधन) अध्यादेश' पर सर्वसम्मति से सहमति दी। राष्ट्रपति ने भी इस अध्यादेश को मंजूरी दे दी है। अध्यादेश में 12 वर्ष तक की बच्चियों के साथ दुष्कर्म करने पर मृत्युदंड का प्रावधान है। इसी तरह बैंक से ऋण लेकर विदेश भागने वालों से कर्ज वसूली के लिए संपत्ति जल्दी के 'दि फ्यूजीटिव इकोनॉमिक ऑफेंडर अध्यादेश 2018' पर भी मंत्रिपरिषद की मुहर लग गई। इसके पहले निर्भया कांड ने देश को विचलित किया था। इस संदर्भ में भी विधि संशोधित की गई थी। किशोरों द्वारा किए जाने वाले जघन्य अपराधों में अभियुक्त की उम्र 18 वर्ष से घटाकर 16 वर्ष की गई थी। पॉक्सो अधिनियम में पहले ही सख्ती की जा चुकी है।

राज्यव्यवस्था और विधायिका अपना कर्तव्य निभा रही हैं, लेकिन राजनीति अपनी राह है। आरोपों-प्रत्यारोपों की आंधी है। समाज सन्न, स्तब्ध और कर्तव्य विमुख है। दुष्कर्म सामाजिक विफलता है। बच्चों का अपराधी बनते जाना समाज व्यवस्था के ध्वस्त हो जाने का सुबूत है। कानून का कठोर होना अच्छी बात है। कानून का भय होना और भी अच्छी बात है, लेकिन समाज का मूकदर्शक हो जाना दुर्भाग्यपूर्ण है। गुप्तकाल में चीनी यात्री फाह्यान भारत आया था। उसने 'फो-क्यो-की' में लिखा था, 'भारत के लोग सुखी समृद्ध हैं। गुप्त काल में चोरीडकैती का भय नहीं है। शासन सौम्य है। अपराधों की गुरुता के आधार पर दंड है।' मेगस्थनीज ने भी 'इंडिका' में भारतीय समाज की प्रशंसा की थी। बुद्ध ने उत्तरदायी शासन के लिए वृद्धों के विचार को महत्व, स्त्री सम्मान व धर्म में विश्वास आदि सात सूत्र बताए थे। आधुनिक भारतीय समाज की चेतना से ये तीन प्रमुख सूत्र गायब हैं। बाजार संचालित समाज में मुनाफा और उपयोगिता ही स्वर्णसूत्र हैं। वरिष्ठ, वृद्ध, आचार्य और माता-पिता अनुपयोगी है। संप्रति स्त्री सम्मान कोई मूल्य नहीं है।

स्त्रियों पर उपयोगितावाद का सिद्धांत ही लागू है। प्रामाणिक युवा का निर्माण माता, पिता, आचार्य, नेता और समाज का दायित्व है। संस्कारी मनुष्य के निर्माण में राज्यव्यवस्था की भूमिका नगण्य होती है। जघन्य अपराधों की बढ़ोतरी कोई भी सरकार बर्दाश्त नहीं करती। अपराधवृद्धि के तमाम कारण होते हैं। इसलिए अपने सदस्यों को उच्चतर जीवन आदर्श देना समाज की ही जिम्मेदारी है, लेकिन समाज तटस्थ है। प्राचीन भारत में राज्यव्यवस्था मुक्त एक समाज था। महाभारत (भीष्म पर्व) में संजय बताते हैं, 'यहां कोई राजा नहीं, कोई दंड नहीं और दंड देने वाला भी नहीं— न तत्र राजा, न दण्डो, न च दण्डिकः। समाज के लोग अपना अपना कर्तव्य पालन करते हैं।' वामपंथियों की कल्पना वाला 'राज्यविहीन समाज' यहां इतिहास का अनुभव है। महाभारत में ऐसे चार जनपदों के नाम हैं— मंग, मशक, मानस और मगद। कम से कम शासन हरेक राज्यव्यवस्था का आदर्श है, लेकिन अधिक से अधिक संस्कारशील पीढ़ी का निर्माण समाज व्यवस्था का ही आदर्श है।

सूरत में एक अज्ञात बच्ची का शव मिला, जिसके शरीर पर 86 घाव थे। कटुआ की पीड़िता आठ साल की ही थी। उस बच्ची का अपहरण और बलात्कार एक समुदाय को भयभीत कर उसे इलाका छोड़ने के लिए मजबूर करने के लिए किया गया था। जो आरोपी पकड़े गए, उनमें एक सेवानिवृत्त सरकारी अधिकारी भी थे, जिसने वह धर्मस्थान बनाया था, जिसमें बच्ची के साथ बलात्कार हुआ। बलात्कार में पुलिसकर्मी भी शामिल थे, जो मामले की छानबीन कर रहे थे। उनमें एक नाबालिग और एक लड़का था, जो पश्चिमी उत्तर प्रदेश से जम्मू सिर्फ बलात्कार करने गया था। जब इनकी गिरफ्तारी हुई, तो इनके पक्ष में जुलूस निकले, जिसमें मंत्री भी शामिल थे। जब न्यायालय में पुलिस ने चार्जशीट दाखिल करने का प्रयास किया, तो वकीलों की भीड़ ने उन्हें रोका। सर्वोच्च न्यायालय के हस्तक्षेप के बाद ही चार्जशीट दाखिल की गई और आरोपी जेल गए। बच्ची का धर्म, बलात्कारियों का धर्म, मंत्रियों का दल-सब रहने दीजिए। पहले विचार कीजिए। अगर ऐसा होगा, तो हमारी बच्चियों का ही नहीं, हमारी इंसानियत का क्या होगा?

### केवल कानून को कठोर बनाने से दुष्कर्म जैसे अपराध पर लगाम नहीं लगेगा (जनसत्ता)

चंद दिनों पहले तक जम्मू के कटुआ जिले का जो रसाना गांव अपरिचित-अनजाना था वह आज देश भर में चर्चा में है। अफसोस यह है कि यह चर्चा किसी नेक काम के लिए नहीं, उस भयावह घटना के कारण हो रही है जो सभ्य समाज को शर्मिदा करने वाली है। 10 जनवरी को इस गांव की आठ साल की एक मासूम बालिका गुम हो गई। सात दिन बाद उसकी लाश मिली। आठ साल की बालिका ने कई दिनों तक वह यातना सही जिसे सुनकर किसी का भी कलेजा छलनी हो जाए। बालिका का शव बरामद होने के बाद जम्मू-कश्मीर की क्राइम ब्रांच की ओर से जो आरोप पत्र अदालत में पेश किया गया उसमें यह बात सामने आई कि उसे कई दिन बंदी बनाकर रखा गया और उससे कई लोगों ने दुष्कर्म किया। इस घटना पर केंद्रीय मंत्री वीके सिंह की टिप्पणी बहुत मार्मिक है। उन्होंने कहा, 'मनुष्य और जानवर में फर्क होना चाहिए और है भी, लेकिन कटुआ में आठ साल की मासूम के साथ जो हुआ उससे लगता है कि इंसान होना गाली है। इससे तो जानवर कहीं अच्छे हैं। जो लोग अपराधियों को धर्म की आड़ में शरण देना चाहते हैं उन्हें पता होना चाहिए कि वे भी अपराधी ही माने जाएंगे। यह याद रखना चाहिए कि बेटी बेटी है, अपराध अपराध है। उसका किसी भी धर्म संप्रदाय से संबंध नहीं।'

कटुआ की भयावह घटना के सामने आने के दौरान ही उन्नाव की एक किशोरी से दुष्कर्म का आरोप भाजपा के विधायक कुलदीप सिंह सेंगर पर लगा। शिकायत दर्ज होने के आठ माह बाद सजा पीड़ित किशोरी के पिता को मिली। विधायक के भाई ने उन्हें बुरी तरह पीटा और फिर भी पुलिस ने उन्हें ही जेल में डाल दिया, जहां उनकी मौत हो गई। उनकी मौत के बाद पीड़िता के परिवार की चीख-पुकार मीडिया के सहयोग से सरकार के कानों तक पहुंची और आखिरकार सरकार के साथ न्यायपालिका भी सक्रिय हुई। इस सक्रियता के बीच मामले की जांच सीबीआई को सौंपी गई, जिसने विधायक को गिरफ्तार कर लिया। दुर्भाग्य से कटुआ और उन्नाव के मामले अपवाद नहीं।

समाज निर्माण की मूलभूत संस्था परिवार है। आदर्श परिवार की मूल संस्था विवाहित पति पत्नी हैं। ऋग्वेद में दोनों का साझा नाम है दंपती। दोनों का मन मिलाना अग्नि देवता का कर्तव्य है। ऋग्वेद के तमाम मंत्रों में दोनों मिलकर 'सोम निचोड़ते हैं। साथ-साथ काम करते हैं। साथ-साथ आनंदित रहते हैं। इसी सहकार की उपलब्धि है संतान। यहां देवों से प्रार्थना है-हमें वैसे ही प्यार समृद्धि दो जैसे पिता देते हैं।' यहां देवों से भी पिता के अनुसार आचरण की प्रार्थना है। पिता बड़ा है और देव छोटे। प्राचीन भारतीय समाज में माता-पिता की सर्वोच्च प्रतिष्ठा है। यक्ष ने युधिष्ठिर से पूछा, 'आकाश से ऊंचा क्या? उत्तर मिला-पिता। फिर अगला प्रश्न है कि पृथ्वी से भारी क्या है? युधिष्ठिर ने कहा, 'माता पृथ्वी से भारी है' लेकिन आधुनिक समाज ने नई पीढ़ी के सामने माता-पिता को बोझ सिद्ध किया है। पिता मनचाहे प्रेम में बाधा है। वह 'लिव इन रिलेशन' में टांग अड़ाता है। माता-पिता देर रात घर आने वाले बच्चों को डांटते हैं। बच्चे दोनों को स्वतंत्रता का बाधक मानते हैं।

शिक्षा व्यवस्था में अंग्रेजी भाषा और आयातित सभ्यता के आदर्श हैं। युवा मन पर सिनेमा का प्रभाव बढ़ा है। नायक नायिकाएं माता पिता को डांटते दिखाई पड़ते हैं। नई पीढ़ी संरक्षकविहीन है और माता पिता असहाय। शिक्षा संस्कार नहीं देती। भय, लज्जा और ग्लानि सामाजिक सुधार के तीन प्रमुख मानस तत्व हैं। तीनों सिरों से गायब हैं। समाज ने कर्तव्य नहीं निभाया। आयातित जीवनशैली का हमला है। भूमंडलीकृत जीवन में बाजार ही सम्राट है। कड़े कानून स्वागतयोग्य हैं। आदर्श विधि व्यवस्था भी समाज की स्वाभाविक इच्छा है, लेकिन विधि व्यवस्था भी आदर्श समाज व्यवस्था की प्यासी होती है। विधि, विधेयक, अधिनियम व परंपरा को सम्मान देने वाले समाज का निर्माण सामाजिक दायित्व है।

पूर्वजों ने यही किया था। स्वाधीनता संग्राम के पहले देश में समाज सुधार के अनेक शक्तिपीठ थे। दयानंद, विवेकानंद, गांधी, तिलक, राजा राममोहन राय, डॉ. आंबेडकर, डॉ. हेडगेवार आदि संस्कृति का संवर्धन कर रहे थे। संप्रति प्रवचनकर्ता बढ़े हैं, प्रवचनों में भीड़ है। वे ईश्वर या मोक्ष प्राप्ति की गारंटी दे रहे हैं, लेकिन प्रामाणिक मनुष्य के निर्माण पर तटस्थ हैं। कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' लिखा। वह सशक्त राष्ट्र राज्य के पक्षधर थे। उन्होंने 'आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दंडनीति चार विद्या बताई हैं। सांख्य योग आदि दर्शन आन्वीक्षिकी हैं। तीन वेद त्रयी हैं। 'वार्ता' कृषि पशुपालन, खनिज आदि की समृद्धि है। चौथी 'दंडनीति' कानून है। सबकी उपयोगिता है।

मूलभूत प्रश्न है कि हमारा समाज प्रथम तीन की जिम्मेदारी न लेकर केवल दंडनीति से ही भारत को कैसे महान बना सकता है? भारत का मन कभी भी हिंसक नहीं रहा, लेकिन पीछे तीन दशक से यहां हिंसा व तनाव का वातावरण है। बीती सदी के अंत में अमेरिका में भी ऐसा ही वातावरण था। आज भी कमोबेश वैसा ही है। तब 'हॉवर्ड एजुकेशनल रिव्यू' पत्रिका ने 'हिंसा और नौजवान' विषय पर विशेषांक निकाला था। इसकी तमाम बातें भारत के वर्तमान संदर्भ में मिलती जुलती हैं।

इसमें अंतरराष्ट्रीय ख्याति के विद्वान चोम्स्की ने अमेरिकी अर्थशास्त्री सिल्विया एन ह्यूलेट की पुस्तक 'धनी समाजों में बच्चों की उपेक्षा' का उल्लेख किया है। संपादक ने पूछा कि 11 साल का बच्चा महंगे जूतों के लिए दूसरे बच्चे को क्यों मार देता है?

## देश में बढ़ती दुष्कर्म की घटनाएं

अपने देश में प्रतिदिन बच्चियां, किशोरियां और महिलाएं दुष्कर्म का शिकार हो रही हैं। चंद दिन पहले झारखंड में महिला और उसकी बेटी से दुष्कर्म हुआ। गुजरात के सूरत में 11 साल की लड़की दरिंदों का शिकार होकर मौत के मुंह में चली गई। हरियाणा के रोहतक में गंदे नाले से एक बैग मिला, जिसमें आठ-दस वर्षीय बालिका की लाश मिली। संदेह है कि उससे दुष्कर्म किया गया। आखिर हमारा समाज इतना कैसे गिर सकता है कि तीन-चार साल की छोटी बच्चियों से लेकर वृद्धा तक को वासना का शिकार बनाया जा रहा है?

## कोई भी अपराधी हो, बचेगा नहीं: प्रधानमंत्री

कठुआ और उन्नाव की घटनाओं और उन पर आम लोगों के रोष के बाद केंद्रीय गृहमंत्री से लेकर प्रधानमंत्री तक ने भरोसा दिलाया कि कोई भी अपराधी हो, बचेगा नहीं। जम्मू-कश्मीर की मुख्यमंत्री महबूबा मुफ्ती ने भी कठुआ कांड के मामले में जल्द न्याय दिलाने के लिए फास्ट ट्रैक कोर्ट के गठन के लिए राज्य के हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश को एक पत्र लिखा है। मुख्यमंत्री चाहती हैं कि इस मामले की नियमित सुनवाई हो और दोषियों को जल्द दंड दिया जाए। दरअसल ऐसा दुष्कर्म के सभी मामलों में होना चाहिए।

## दुष्कर्मियों को मौत की सजा

महिला एवं बाल विकास मंत्री मेनका गांधी ने कहा है कि 12 वर्ष से कम आयु की बच्चियों से दुष्कर्म के अपराधियों को मौत की सजा दी जा सके, इसके लिए संबंधित कानून में संशोधन किया जाएगा। अगर यह काम हो भी जाए तो भी जब तक पुलिस और जांच एजेंसियों का काम-काज नहीं सुधरता तब तक कुछ ठोस शायद ही हासिल हो। आखिर हम यह कैसे भूल सकते हैं कि हरियाणा में एक स्कूल के छात्र की हत्या में पुलिस ने किस तरह स्कूली बस के एक कर्मचारी को हत्यारा बता दिया था और यह दावा किया था कि उसे पर्याप्त प्रमाण भी मिल गए हैं।

## निष्पक्ष जांच की मांग

गनीमत रही कि मामले की जांच सीबीआइ ने की और उस गरीब की जान बची। कुछ इसी तरह का एक मामला पंजाब में देखने को मिला। फिल्लौर में एक सदिग्ध अपराधी से नशे का धंधा कबूल करवाने के लिए उसके मुंह में तेजाब डाल दिया गया। दरअसल यक्ष प्रश्न यही है कि क्या हम निष्पक्ष जांच की व्यवस्था कर पाएंगे? कहीं बेकसूर और कमजोर लोगों के गले में ही तो फांसी का फंदे नहीं डाल दिया जाएगा? क्या कोई सरकार, समाज सुधारक, विचारक इस बारे में सोचेगा कि समाज में अंधवासना की प्रवृत्ति क्यों बढ़ती जा रही है? जिस देश में साबुन की एक टिकिया बेचने के लिए भी अर्धनग्न लड़कियों का प्रदर्शन किया जाए और अन्य विलासी चीजों को बेचने के लिए कामुकता की आग में घी डालने वाले विज्ञापन प्रचारित-प्रसारित किए जाएं तथा मादक पदार्थों की खुलेआम बिक्री पर रोक लगाने के उपाय न किए जाएं वहां क्या महिलाओं के खिलाफ होने वाले अपराधों पर लगाम लग सकती है? क्या ऐसे देश में महिलाओं को आदर से देखा जा सकता है? यह भी ध्यान रहे कि नैतिक शिक्षा को हाशिये पर ठेला जा रहा है और यहां तक कि स्कूली पाठ्यक्रमों से महापुरुषों के जीवन चरित्र गायब हो रहे हैं।



चोम्स्की ने कहा टीवी बताता है कि यह जूता जिसके पास है वही मर्द है। बच्चे 11 से 12 घंटे टीवी से चिपके हैं। स्कूलों में लड़कियों को छेड़ते हैं। अध्यापक डांटने के बजाय स्कूल के बाहर मिलने का परामर्श देते हैं। टीवी अमेरिका में महत्वपूर्ण गुरु है तो भारत में भी। यहां भी बच्चे टीवी भरोसे हैं। आचार्य, माता, पिता, धर्मगुरु, सामाजिक कार्यकर्ता आगे आए। भारतीय समाज का सांस्कृतिक चौतन्य जागृत करें। सामाजिक मर्यादा का भय हो। तभी कानून का भय भी होगा।

## स्वतंत्र-निष्पक्ष न्यायिक प्रक्रिया में बाधक (नव भारत टाइम्स)

कठुआ सामूहिक बलात्कार और हत्याकांड तथा उन्नाव बलात्कार कांड को लेकर खबरों में सबसे आगे रहने की होड़ में पीड़िता की पहचान सार्वजनिक करने जैसे मुद्दे पर मीडिया, विशेषकर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, को एक बार फिर अदालत की फटकार सुननी पड़ी है। दिल्ली उच्च न्यायालय ने कई मीडिया घरानों को तलब भी कर लिया है।

बीते साल तत्कालीन प्रधान न्यायाधीश जे.एस. खेहर ने आपराधिक मामले में संदिग्ध व्यक्तियों के मीडिया ट्रायल पर चिंता व्यक्त की थी। न्यायालय का मानना था कि पुलिस द्वारा मीडिया को जानकारी देने के बारे में दिशा-निर्देशों की जरूरत है क्योंकि मीडिया की खबरें कभी-कभी मुकदमे की स्वतंत्र और निष्पक्ष जांच को प्रभावित करती हैं। यही नहीं, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया पर संदिग्ध को दिखाये जाने से उसकी प्रतिष्ठा हमेशा के लिये खत्म हो जाती है।

आखिर आपराधिक मामलों की रिपोर्टिंग करते समय अतिरिक्त सावधानी बरतने और संदिग्ध व्यक्तियों के अधिकारों को ध्यान में रखने के लिये न्यायालय के कई फैसलों और न्यायिक निर्देशों के बावजूद ऐसी घटनाओं को क्यों बार-बार अधिक से अधिक सनसनीखेज बनाने की कोशिश की जाती है? क्यों अपराध की जांच पूरी होने और आरोपियों पर मुकदमा चलने से पहले ही मीडिया उन्हें अपराधी घोषित करने का प्रयास करने लगता है?

क्या बलात्कार, सामूहिक बलात्कार और ऐसे दूसरे अपराधों में तथ्यों की पुष्टि के बगैर ही उन्हें जनता के सामने लाकर समूची न्याय प्रशासन प्रक्रिया को प्रभावित करने का प्रयास तो नहीं किया जाता? इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में ग्रांड जीरो से रिपोर्टिंग के मामलों में यह असंतुलन अक्सर देखा जा सकता है।

ऐसे सवालों पर मंथन के दौरान न्यायालय की उस टिप्पणी पर भी गौर करना चाहिए, जिसमें कहा गया था कि मीडिया ट्रायल का मुद्दा किसी भी आपराधिक मामले की निष्पक्ष जांच और मुकदमे की सुनवाई से ही नहीं बल्कि आरोपी को संविधान के अनुच्छेद 21 में प्रदत्त जीने के अधिकार से भी जुड़ा है। बेहतर हो अगर ऐसी घटनाओं की खबरें देते समय संतुलन बनाये रखकर अदालत के आक्रोश से बचा जा सकता है।

मई, 2015 में तत्कालीन राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी ने बोफोर्स तोप सौदा दलाली कांड को मीडिया ट्रायल की उपज करार देकर मीडिया की विश्वसनीयता पर सवाल खड़े किये थे। इसकी वजह दलाली कांड के सारे आरोपियों का आरोप मुक्त हो जाना था।

## समाज को सुधारने की जरूरत

आखिर हम समाज को चरित्रवान और नैतिक बनाने के लिए कुछ क्यों नहीं करना चाहते? आज की जरूरत नेताओं के पंजे से पुलिस को मुक्त करके स्वतंत्र कार्य का अवसर देना तो है ही, भावी पीढ़ी को नैतिक शिक्षा से लैस करने की भी है। अच्छा हो कि हमारे शिक्षाशास्त्री, हमारे धर्म गुरु, हमारे समाज सुधारक अपने घरों-दफ्तरों से बाहर निकलें और समाज को सुधारने का काम अपने हाथ में लें। और भी अच्छा तो यह होगा कि हमारे धर्मगुरु कुछ समय के लिए मोक्ष-मुक्ति का रास्ता बताने के स्थान पर लोगों को यह बताएं कि समाज सदाचारी कैसे बने? वे लोगों को समझाएं कि स्वस्थ समाज कैसे बनता है? हमें यह भी समझना होगा कि दुष्कर्म जैसे अपराधों पर लगाम लगाने का काम केवल कानूनों को कठोर बनाते जाने से नहीं होने वाला। आखिर यह एक तथ्य है कि निर्भया प्रकरण के बाद महिला अपराध संबंधी कई कानून कठोर किए गए, लेकिन क्या यह कहा जा सकता है कि उसके बाद से महिलाओं के खिलाफ अपराधों पर लगाम लगी है?

पहले भी ऐसे कई मामलों में मीडिया पीड़ित की पहचान गुप्त रखने में विफल रहा है। संभव है कि स्थानीय स्तर राजनीतिक दल और कुछ नेता इसका राजनीतिक लाभ उठाने का प्रयास करते हों लेकिन इस तरह की रिपोर्टिंग देश में तनाव पैदा कर सकती है।

कभी-कभी आपराधिक मामले, विशेषकर यौन हिंसा से संबंधित प्रकरण में मीडिया की जरूरत से ज्यादा दिलचस्पी या फिर इसे लेकर जन आन्दोलन कुछ हद तक कानून के विपरीत भूमिका में आ जाते हैं, जिससे न्याय प्रक्रिया प्रभावित होने की आशंका हो जाती है।

मीडिया ट्रायल को लेकर अदालतों और विशेषकर उच्चतम न्यायालय ने तीखी टिप्पणियों के बावजूद 2012 में लंबित मामलों की मीडिया में रिपोर्टिंग के संदर्भ में कोई भी दिशा-निर्देश तैयार करने से इनकार कर दिया था। सितंबर, 1997 में यौन उत्पीड़न के एक मामले में उच्चतम न्यायालय ने कुछ तल्ख टिप्पणियां करते हुए कहा था कि मुकदमे की सुनवाई करने वाले न्यायाधीश को किसी भी दबाव से खुद को परे रखते हुए सख्ती से कानून के शासन से निर्देशित करना चाहिए।

इसी तरह, फरवरी 2005 में न्यायमूर्ति एन. संतोष हेगड़े और न्यायमूर्ति एस.बी. सिन्हा की खंडपीठ ने अदालतों में लंबित मुकदमों के बारे में एकतरफा लेख और खबरें प्रकाशित किये जाने की प्रवृत्ति की आलोचना करते हुए मीडिया को आगाह भी किया था। यही नहीं, सितंबर 2014 में तत्कालीन प्रधान न्यायाधीश आर.एम. लोढा और न्यायमूर्ति रोहितन नरिमन की खंडपीठ ने तो यहां तक कहा था कि पुलिस और जांच एजेंसियों को किसी भी आपराधिक मामले में गिरफ्तार आरोपी को मीडिया के सामने परेड कराने या ऐसे मामले की जांच और इसकी प्रगति की जानकारी प्रेस को देने से बाज आना चाहिए।

न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के तहत मजिस्ट्रेट के समक्ष आरोपी के दर्ज बयान मीडिया को प्रकाशन और प्रसारण के लिए मिलने पर भी आपत्ति थी। न्यायालय को लगता है कि इस तरह से आपराधिक मुकदमे की अदालत में सुनवाई के साथ ही समानांतर मीडिया ट्रायल होता है।

### महिला सशक्तिकरण की आवश्यकता क्यों पड़ी?

- सदियों से पुरुषों द्वारा महिलाओं पर किए गए वर्चस्व और भेदभाव के कारण महिला सशक्तिकरण के लिए आवश्यकता पैदा हुई है। सैकड़ों औरते दुनियाभर में पुरुषों द्वारा किया गया भेदभावपूर्ण व्यवहार की लक्ष्य बनी है। भारत अलग नहीं है, भारत एक जटिल देश है। जहां पर देवी की पूजा की जाती है, अपनी बेटियों, माताओं और बहनों को महत्व दिया जाता है।
- वही दूसरी ओर परम्पराओं, रीति-रिवाजों और धार्मिक मान्यताओं की आड़ में उन पर दुराचार भी किया गया है। हर धर्म में महिलाओं को सम्मान देना सीखाया जाता है, लेकिन अनेक कुरीतियाँ और प्रथाएं ऐसी हैं, जिनके चलते औरतों को प्रताड़ित किया जाता रहा है। उदाहरण के लिए:- सती प्रथा, दहेज प्रथा, कन्या भ्रूण हत्या, यौन हिंसा, यौन उत्पीड़न, घर या काम के स्थान पर, वेश्यावृत्ति, बलात्कार, मानव तस्करी, घरेलू हिंसा आदि।

### संवैधानिक मौलिक अधिकार

- भारतीय संविधान के प्रावधान के अनुसार पुरुषों की तरह सभी क्षेत्रों में महिलाओं को बराबर अधिकार देने के लिए कानूनी स्थिति है। भारत में बच्चों और महिलाओं के उचित विकास हेतु इस क्षेत्र में महिला और बाल-विकास अच्छे से कार्य कर रहा है।
- संविधान के अनुच्छेद-14 में कानूनी समानता, अनुच्छेद-15 (3) में जाति, धर्म, लिंग एवं जन्म स्थान आदि के आधार पर भेदभाव न करना।
- अनुच्छेद-16 (1) में लोक सेवाओं में बिना भेदभाव के अवसर की समानता। अनुच्छेद-19 (1) में समान रूप से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता।
- अनुच्छेद-21 में स्त्री एवं पुरुषों दोनों को प्राण एवं दैहिक स्वाधीनता से वंचित न करना।
- अनुच्छेद-23-24 में स्त्री एवं पुरुष दोनों को ही शोषण के विरुद्ध अधिकार समान रूप से प्राप्त।
- अनुच्छेद-25-28 में धार्मिक स्वतंत्रता दोनों को समान रूप से प्राप्त।
- अनुच्छेद-29-30 में शिक्षा एवं संस्कृति का अधिकार।
- अनुच्छेद-32 में संवैधानिक उपचारों का अधिकार।
- अनुच्छेद-39(घ) में पुरुषों एवं स्त्रियों दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन का अधिकार।
- अनुच्छेद-42 महिलाओं हेतु प्रसूति सहायता प्राप्ति की व्यवस्था।
- अनुच्छेद-51(क)(ड) में भारत में सभी लोग ऐसी प्रथाओं का त्याग करें जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हों।
- अनुच्छेद-33 (क) में प्रस्तावित 84वें संविधान संशोधन के जरिए लोकसभा में महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था।

- अनुच्छेद-332 (क) में प्रस्तावित 84वें संशोधन के जरिए राज्यों की विधानसभाओं में महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था है।
- गर्भावस्था में ही मादा भ्रूण हत्या करने के उद्देश्य से लिंग परीक्षण को रोकने हेतु पूर्व निदान तकनीक अधिनियम 1994 निर्मित किया गया। इसका पालन न करने वालों को 10-15 हजार रुपए का जुर्माना तथा 3-5 साल तक की सजा का प्रावधान किया गया है। दहेज जैसे सामाजिक अभिशाप से महिला को बचाने के लिए 1961 में 'दहेज निषेध अधिनियम' बनाया गया। 1986 में इसे भी संशोधित कर समयानुकूल बनाया गया।
- विभिन्न संस्थाओं में कार्यरत महिलाओं के स्वास्थ्य लाभ के लिए अवकाश की विशेष व्यवस्था, संविधान के अनुच्छेद-42 के अनुकूल करने के लिए 1961 में प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम पारित किया गया। इसके चलते 135 दिनों का अवकाश मिलने लगा है।

### भारतीय दंड संहिता में महिलाओं के लिए कानून

- दहेज हत्या से जुड़े कानूनी प्रावधान- दहेज हत्या को लेकर भारतीय दंड संहिता(आई.पी.सी.) में स्पष्ट प्रावधान है। इसके अंतर्गत धारा-304(बी), 302, 306 एवं 498-ए आती है।
- दहेज हत्या का अर्थ है, औरत की जलने या किसी शारिरिक चोट के कारण हुई मौत या शादी के 7 साल के अंदर किन्ही सन्देहजनक कारण से हुई मृत्यु। इसके सम्बन्ध में धारा-304 (बी) में सजा दी जाती है, जो कि सात साल कैद है। इस जुर्म के अभियुक्त को जमानत नहीं मिलती।
- आई.पी.सी की धारा-302 में दहेज हत्या के मामले में सजा का प्रावधान है। इसके तहत किसी औरत की दहेज हत्या के अभियुक्त का अदालत में अपराध सिद्ध होने पर उसे उग्र कैद या फांसी हो सकती है।
- अगर ससुराल वाले किसी महिला को दहेज के लिए मानसिक या भावनात्मक रूप से हिंसा का शिकार बनाते हैं, जिसके चलते वह औरत आत्महत्या कर लेती है, तो धारा-306 लागू होगी, जिसके तहत दोष साबित होने पर जुर्माना और 10 साल तक की सजा हो सकती है।
- पति या रिश्तेदार द्वारा दहेज के लालच में महिला के साथ क्रूरता और हिंसा का व्यवहार करने पर आई.पी.सी की धारा-498 (ए) के तहत कठोर दंड का प्रावधान है।

### संभावित प्रश्न

प्रश्न. हाल ही में कटुआ में घटित एक आठ वर्ष की बच्ची के साथ दुष्कर्म की घटना यह सोचने पर मजबूर करती है कि क्या ऐसे मामलों पर नियंत्रण लगाने हेतु केवल कानूनी सक्रियता ही आवश्यक है अथवा सामाजिक सक्रियता की भी आवश्यकता है? इस संदर्भ में अपने विचार प्रस्तुत करें। (250 शब्द)

# मृत्युदण्ड : एक प्रश्न

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-2 (शासन व्यवस्था) से संबंधित है।

हाल ही में सरकार ने आपराधिक कानून (संशोधन) अध्यादेश 2018 के द्वारा 12 वर्ष से कम उम्र की बच्चियों से दुष्कर्म के दोषियों को मौत की सजा का प्रावधान किया है। इस संदर्भ में हिन्दी समाचार पत्र 'जनसत्ता', 'दैनिक ट्रिब्यून' और 'नवभारत टाइम्स', में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।

## अपराध और दंड (जनसत्ता)

आखिरकार बाल यौन उत्पीड़न संरक्षण कानून यानी पाँक्सो में संशोधन संबंधी अध्यादेश को केंद्रीय मंत्रिमंडल और फिर राष्ट्रपति की मंजूरी मिल गई। अब बारह साल से कम उम्र की बच्चियों के साथ बलात्कार करने वालों को मौत की सजा का प्रावधान किया जा सकेगा। पिछले दिनों उन्नाव, कटुआ और सूरत आदि में नाबालिग बच्चियों के साथ सामूहिक बलात्कार की घटनाएं सामने आईं, तो देश भर से मांग उठी कि पाँक्सो कानून में बदलाव कर नाबालिगों के साथ बलात्कार मामले में फांसी का प्रावधान किया जाना चाहिए। ऐसे मामलों की जांच और निपटारा शीघ्र होना चाहिए। इन मांगों के मद्देनजर सरकार ने पाँक्सो कानून में बदलाव संबंधी अध्यादेश तैयार किया, जिसमें पहले से तय न्यूनतम सजाओं को बढ़ा कर मौत की सजा तक कर दिया गया है। ऐसे मामलों के निपटारे के लिए त्वरित अदालतों का गठन होगा और जांच को अनिवार्य रूप से दो महीने और अपील को छह महीने में निपटाना होगा।

सरकार के इस कदम से निस्संदेह बहुत सारे लोगों में भरोसा बना है कि बलात्कार जैसे जघन्य अपराध करने वालों के मन में कुछ भय पैदा होगा और ऐसे अपराधों की दर में कमी आएगी। मगर कई विशेषज्ञ मौत की सजा को बलात्कार जैसी प्रवृत्ति पर काबू पाने के लिए पर्याप्त नहीं मानते। उनका मानना है कि चूंकि ऐसे ज्यादातर मामलों में दोषी आसपास के लोग होते हैं, इसलिए उनकी शिकायतों की दर कम हो सकती है। पहले ही ऐसे अपराधों में सजा की दर बहुत कम है। इसकी बड़ी वजह मामलों की निष्पक्ष जांच न हो पाना, गवाहों को डरा-धमका या बरगला कर बयान बदलने के लिए तैयार कर लिया जाना है। यह अकारण नहीं है कि जिन मामलों में रसूख वाले लोग आरोपी होते हैं, उनमें सजा की दर लगभग न के बराबर है। उन्नाव और कटुआ मामले में जिस तरह आरोपियों को बचाने के लिए पुलिस और सत्ता पक्ष के लोग खुलेआम सामने आ खड़े हुए, वह इस बात का प्रमाण है कि कानून में चाहे जितने कड़े प्रावधान हों, रसूख वाले लोग जांच को प्रभावित करने में कामयाब हो जाते हैं। इसलिए स्वाभाविक ही मौत की सजा जैसे कड़े प्रावधानों के बावजूद कुछ लोग संतुष्ट नहीं हैं। वैसे भी हमारे यहां मौत की सजा बहुत अपरिहार्य स्थितियों में सुनाई जाती है, क्योंकि ऐसी सजा से किसी आपराधिक प्रवृत्ति में बदलाव का दावा नहीं किया जा सकता।

## दोषियों को मृत्युदंड (दैनिक ट्रिब्यून)

कटुआ और उन्नाव में हुए अमानवीय कृत्यों की वजह से देश में व्याप्त असंतोष के मद्देनजर सरकार ने क्रिमिनल एक्ट अध्यादेश 2018 जारी किया, जिस पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर भी हो चुके हैं। इसके तहत 12 वर्ष से कम उम्र की लड़कियों के साथ बलात्कार की सजा मृत्युदंड है, साथ ही 16 वर्ष तक की लड़कियों के साथ किए गए इस जघन्य अपराध की सजा उम्रकैद है। यह विचारणीय है कि क्या इसके बाद हम इस जघन्य कृत्य पर अंकुश लगा पाएंगे। यदि ध्यान दें तो निर्भया कांड के बाद भी वर्मा कमेटी की सिफारिशों को लागू करते हुए तत्कालीन कानूनों में काफी बदलाव किए गए थे, परंतु समस्या जस की तस है। नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो के हिसाब से इस तरह के अपराधों में काफी बढ़ोतरी आई है। सरकार ने इन्हें नियंत्रित करने के लिए फास्ट ट्रैक कोर्ट का गठन, इस तरह के अपराधों का राष्ट्रीय डेटाबेस और यौन अपराधियों की प्रोफाइल तैयार करना आदि कार्यों पर विचार किया है। लोगों के आक्रोश को देखते हुए कठिनतम सजा का प्रावधान भी किया है।

सरकार का यह भी दायित्व है कि इस तरह के अपराधों के बढ़ने के मूल कारणों पर भी ध्यान देकर उनका विश्लेषण किया जाए। साथ ही यह भी सुनिश्चित किया जाए कि कानून की विसंगतियों से किसी को अनुचित सजा भी न मिले। विगत के अनुभव बताते हैं कि सख्त कानूनों का दुरुपयोग किया जाता रहा है। कभी आत्मीय व अंतरंग रहे रिश्तों में किसी तरह के बिगाड़ के बाद किसी को दुष्कर्म के आरोप में फंसाने जैसी कुत्सित कोशिशें न हो सकें। इस बाबत देश की अदालतें भी चेताती रही हैं और कई ऐसे फ़ैसले आये भी हैं, जिसमें न्याय की अवधारणा को मूर्त रूप देने का प्रयास किया गया है। बच्चियों से दुष्कर्म की घटनाओं के बाद उपजे सामाजिक आक्रोश को देखते हुए सरकार द्वारा कठोर कानून लाने की दिशा में पहल अपरिहार्य थी लेकिन सरकार का यह भी कर्तव्य है कि इस तरह के कानून के चलते कहीं कोई निर्दोष इस कानून का शिकार न हो जाए। समाज के उस वर्ग को रेखांकित करना जरूरी है जो इस तरह के अपराधों में ज्यादा संलग्न पाए गए हैं, उनकी सोच में बदलाव की कोशिश हो। शिक्षा व सामाजिक जागरूकता ऐसे अपराधों पर नियंत्रण लगा सकती है। कठोर दंड कुछ हद तक तो ऐसी घटनाओं पर नियंत्रण लगा सकता है परन्तु इसमें निर्णयात्मक भूमिका सामाजिक चेतना की ही है।



निर्भया कांड के बाद बलात्कार मामलों में सजा के कड़े प्रावधान की मांग उठी थी। तब पॉक्सो कानून में जो प्रावधान किए गए, वे कम कड़े नहीं हैं। उसमें भी ताउम्र या मौत तक कारावास का प्रावधान है। पर उसका कोई असर नजर नहीं आया है। उसके बाद बलात्कार और पीड़िता की हत्या की दर लगातार बढ़ी है। इसकी बढ़ी वजह अपराधियों के मन में कहीं न कहीं यह भरोसा है कि ऐसे मामलों की जांचों को प्रभावित और तथ्यों के साथ छेड़छाड़ करके आसानी से बचा जा सकता है। ऐसे में त्वरित अदालतों के गठन से जल्दी न्याय मिलने की उम्मीद तो जगी है, पर जांचों को निष्पक्ष बनाने के लिए कुछ और व्यावहारिक कदम उठाने की जरूरत अब भी बनी हुई है। ऐसे मामलों की शिकायत दर्ज करने और जांचों आदि में जब तक प्रशासन का रवैया जाति, समुदाय आदि के पूर्वाग्रहों और रसूखदार लोगों के प्रभाव से मुक्त नहीं होगा, बलात्कार जैसी प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने के लिए मौत की सजा का प्रावधान पर्याप्त नहीं होगा।

### बुनियादी समाधान चाहिए ( नवभारत टाइम्स )

उन्नाव और कटुआ में बलात्कार की घटनाओं ने देश को झकझोर दिया है। विपक्ष और जनता के दबाव के बाद केंद्र सरकार ने इस पर चुप्पी तोड़ी और प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने इन घटनाओं को शर्मनाक बताते हुए देश को आश्वस्त किया कि पीड़िताओं को इंसाफ जरूर मिलेगा। मुश्किल यह है कि हमारा राजनीतिक नेतृत्व आज भी बलात्कार जैसी समस्या को लेकर एक अतिरेक का शिकार है। वह बुनियादी समाधान ढूंढने की जगह इसका पॉप्युलिस्ट हल ढूंढने की बात करता है।

अब जैसे जम्मू-कश्मीर की मुख्यमंत्री महबूबा मुफ्ती ने ही नहीं, केंद्रीय महिला एवं बाल कल्याण मंत्री मेनका गांधी ने भी कहा है कि बच्चियों से रेप करने वालों को फांसी की सजा दी जानी चाहिए। इस तरह की बात कई और नेता भी कहते रहे हैं। इससे जनाक्रोश को शांत करने में थोड़ी मदद तो मिलती है, पर यह कोई समाधान नहीं है। निर्भया कांड के बाद तो सरकार ने बलात्कार के अपराध से संबंधित कानूनी प्रावधानों को बेहद कठोर कर दिया, लेकिन इसके बावजूद रेप और महिलाओं के प्रति दूसरे अपराधों में कोई कमी नहीं आई है। अनेक विशेषज्ञों ने स्पष्ट कहा है कि अगर रेपिस्ट के लिए फांसी का कानून बना तो सबूत मिटाने के लिए बलात्कार की शिकार महिला की हत्या जैसी घटनाएं तेजी से बढ़ेंगी।

मूल समस्या है कानून का पालन न होना, मामले की सुनवाई न हो पाना। बड़े शहरों में तो रेप की शिकायत दर्ज भी हो जाती है, मगर कस्बों और गांवों में तो यह भी नहीं होता। आमतौर पर पुलिस तब तक एफआईआर दर्ज नहीं करती, जब तक कि बड़ी संख्या में भीड़ थाने न पहुंच जाए। अक्सर अब कोर्ट के निर्देश पर प्राथमिकी दर्ज होती है। परंतु इससे भी बड़ी विडंबना यह है कि अदालतों में भी उन्हीं मामलों को प्राथमिकता और गति मिलती है, जो मीडिया की सुर्खियां बनते हैं। दो साल पहले के आंकड़े के अनुसार, रेप के चार में सिर्फ एक मामले में ही सजा हो पाई। इसी कारण अपराधियों का हौसला बढ़ रहा है। इसलिए फांसी या कानून को सख्त बनाने का जुमला छोड़कर मौजूदा कानूनों के ही सख्ती से पालन पर जोर दिया जाए। सरकार यह सुनिश्चित करे कि रेप की हर शिकायत दर्ज हो, मामला शीघ्र अंजाम तक पहुंचे और अपराधी को सजा हो।

### फांसी से क्या होगा ( अमर उजाला )

बलात्कार पर रोक लगाने के लिए सरकार ने सजा और सख्त करने का जो रास्ता चुना है, उससे समाज के एक तबके को भले ही संतोष हुआ हो पर इससे समस्या के समाधान की कोई उम्मीद नहीं बनती। उलटे इसने कई नई आशंकाओं को जन्म दिया है, जिन्हें भांपकर कई सामाजिक संगठनों ने सरकार के फैसले का विरोध भी किया है। सरकार ने आपराधिक कानून (संशोधन) अध्यादेश 2018 के जरिए 12 साल से कम उम्र की बच्चियों से बलात्कार के दोषियों के लिए मौत की सजा का प्रावधान किया है।

ऐसे मामलों से निपटने के लिए नई त्वरित अदालतें गठित की जाएंगी और सभी पुलिस थानों और अस्पतालों को बलात्कार के मामलों की जांच के लिए विशेष फरेंसिक किट उपलब्ध कराई जाएंगी। 16 साल से कम उम्र की लड़कियों के बलात्कार मामले में न्यूनतम सजा 10 साल से बढ़ाकर 20 साल की गई है और अपराध की प्रवृत्ति के आधार पर इसे बढ़ाकर आजीवन कारावास भी किया जा सकता है। कटुआ में एक बच्ची के साथ रेप और उसकी हत्या के बाद देश भर में फैले आक्रोश को शांत करने के लिए सरकार यह अध्यादेश लाई है, लेकिन विडंबना यह है कि आज भी बलात्कार की समस्या पर गंभीरता से विचार नहीं किया जा रहा। सत्तारूढ़ राजनेताओं और कई बुद्धिजीवियों को भी लगता है कि कानून सख्त बना देने से संकट खत्म हो जाएगा। जबकि सचाई इसके विपरीत है। निर्भया कांड के बाद सरकार ने बलात्कार संबंधी कानूनी प्रावधानों को बेहद कठोर कर दिया, लेकिन रेप और महिलाओं के प्रति किए जाने वाले अन्य अपराध कम होने के बजाय बढ़ते ही जा रहे हैं।

नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो के आंकड़ों के अनुसार 2015 में बलात्कार के कुल 10,854 मामले दर्ज हुए जबकि 2016 में यह आंकड़ा 19,765 हो गया। असल समस्या है थाने से ही मामला बिगाड़ दिया जाना और अदालत में मुकदमा खड़ा ही न हो पाना। शहरों में तो रेप की शिकायत दर्ज भी हो जाती है, कस्बों और गांवों में तो उलटे शिकायत दर्ज करने वाले ही गंभीर मुश्किलों में पड़ जाते हैं। जैसे-तैसे मामला अदालत तक पहुंच जाए तो वहां किस्मत वाले ही दोषियों को सजा दिलाने में कामयाब हो पाते हैं। बलात्कार के मामलों में सजा दिए जाने की दर अभी करीब 24 फीसदी है जबकि बच्चियों के मामले में तो यह मात्र 20 फीसदी है। अपराधियों में खौफ न पैदा होने का यही मुख्य कारण है। अगर मौजूदा कानूनों के तहत ही हर अभियुक्त को सजा मिलती तो हालात इतने ज्यादा नहीं बिगड़ते। अब फांसी के प्रावधान के बाद यह आशंका बढ़ गई है कि मामले दर्ज ही न कराए जाएं, क्योंकि रेप के 95 फीसदी मामलों में परिवार के सदस्य ही दोषी होते हैं। पीड़िताओं की हत्या के मामले भी इससे बढ़ सकते हैं। बहरहाल, अभी तो सरकारें किसी तरह सजा की दर बढ़ाकर दिखाएं।

## व्यवस्था को सुदृढ़ करने की जरूरत ( प्रभात खबर )

कुछ महीने पहले ही सुप्रीम कोर्ट में पॉक्सो मामलों में सुनवाई के दौरान केंद्र सरकार ने कहा था कि मौत की सजा से अपराधों का समाधान नहीं हो सकता है। उन्नाव और कठुआ रेप मामलों में देशव्यापी राजनीतिक असंतोष को भांपकर सरकार ने यू-टर्न लेते हुए 12 साल तक की बच्चियों से दुष्कर्म के दोषियों को फांसी की सजा के लिए अध्यादेश जारी कर दिया।

राष्ट्रपति की मंजूरी के बाद अध्यादेश को तुरंत प्रभाव से लागू कर दिया गया है, पर इसके प्रावधानों को छह महीने के भीतर संसद के माध्यम से कानून में बदलना होगा। विशेष लोक अभियोजकों की नियुक्ति, पुलिस और अस्पतालों की व्यवस्था में सुधार तथा एकल खिड़की की स्थापना के लिए राज्यों को ही कार्यवाई करनी होगी। बच्चियों से दुष्कर्म मामलों की सुनवाई के लिए विशेष फास्ट ट्रैक अदालतों के गठन के लिए संबंधित राज्य के हाइकोर्ट का अनुमोदन चाहिए होगा।

रेप से पीड़ित बच्चियों की सहायता के लिए चलाये जा रहे वन-स्टॉप सेंटर की देश के सभी जिलों में स्थापना के प्रावधान व्यावहारिक धरातल पर कितना खरा उतरेंगे, इसका आकलन आनेवाले समय में ही होगा।

अनेक राज्यों ने मृत्युदंड के लिए पॉक्सो कानून में संसोधन की बजाय सिर्फ आइपीसी में बदलाव के लिए केंद्र सरकार को प्रस्ताव भेजे थे। निर्भया कांड के बाद जस्टिस जेएस वर्मा कमेटी की सिफारिशों के अनुसार सरकार द्वारा कानून लाया गया था, लेकिन इस बार अध्यादेश के लिए विधि आयोग से भी आवश्यक परामर्श नहीं किया गया।

निर्भया मामले में भी देशव्यापी आक्रोश के बाद अपराध कानूनों में बदलाव करके रेप के खिलाफ सख्त सजा का प्रावधान किया गया था। एक अध्ययन के अनुसार, पॉक्सो कानून के तहत दर्ज मामलों में अदालत के फैसलों के लिए औसतन 20 साल इंतजार करना पड़ सकता है। निर्भया मामले में एक आरोपी ने आत्महत्या कर ली, पर बाकी अभियुक्तों को अब भी फांसी मिलना बाकी है।

उन्नाव और कठुआ मामलों की हाइकोर्ट और सुप्रीम कोर्ट द्वारा सुनवाईयां हो रही हैं और दूसरी ओर निर्भया मामले के बाद दायर अनेक पीआइएल पर अभी तक फैसला ही नहीं हुआ है। निर्भया मामले के बाद प्रोमिला शंकर की पीआइएल में बहस के दौरान मैंने यौन अपराधियों के डाटाबेस बनाने की मांग की थी, जिसे इस अध्यादेश के माध्यम से छह साल बाद मंजूरी दी गयी है।

सख्त कानूनों के बावजूद, देश में हर 15 मिनट पर एक बच्चा यौन अपराध का शिकार होता है। निर्भया मामले में जनांदोलन के बाद सरकार बदलने के बावजूद दिल्ली में रेप मामलों में भारी बढ़ोतरी हुई है। रेप को रोकने की व्यवस्था पर बहस करने की बजाय स्वाति मालीवाल द्वारा मौत के कानून के लिए एक और राजनीतिक अनशन कितना कारगर होगा?

दिल्ली सरकार ने रेप के मामलों को रोकने के लिए सार्वजनिक स्थानों पर कई लाख सीसीटीवी लगाने की योजना बनायी, परंतु रेप के 94 फीसदी मामलों में आरोपी परिचित, पड़ोसी या परिवार से जुड़े व्यक्तियों को सीसीटीवी से कैसे रोका जा सकता है? मासूम बच्चों से रेप करनेवाले अधिकांश आरोपी किशोर होते हैं, जिन्हें कानून के अनुसार मौत की सजा नहीं दी जा सकती।

निर्भया कांड के बाद यह साबित हुआ कि रेप मामलों के अधिकांश: आरोपी पोर्नोग्राफी तथा रेप वीडियो के आदी होते हैं। सुप्रीम कोर्ट के दिशा-निर्देशों के बावजूद केंद्र सरकार इंटरनेट में पोर्नोग्राफी कंटेंट और वीडियो को रोकने में विफल रही है। छोटे बच्चों से यौन अपराधों की जांच के दौरान सबूतों को जमा करना पुलिस के सामने सबसे बड़ी चुनौती होती है।

ऐसे मामलों में आरोपों को सिद्ध करने के लिए केवल पीड़ित का बयान और मेडिकल रिपोर्ट ही होती है। देश में फॉरेंसिक लैब्स की बड़े पैमाने पर कमी है। कठुआ मामले में दो मेडिकल रिपोर्ट और रेप के प्रमाणों पर विवाद आनेवाले समय में ऐसे मामलों में कानून के दुरुपयोग को बढ़ावा दे सकता है।

दिल्ली में हालिया हुए घटनाक्रम में रेप मामले को दबाने के लिए माता-पिता ने आरोपी से 20 लाख का सौदा कर लिया। नेशनल लॉ यूनिवर्सिटी, दिल्ली द्वारा किये गये अध्ययन के अनुसार, मृत्युदंड के मामलों में अधिकांश आरोपी गरीब और अशिक्षित होते हैं।

देश में बड़े पैमाने पर बच्चों की खरीद-फरोख्त के सौदागरों का गिरोह क्या आनेवाले समय में रेप के फर्जी मामलों को बढ़ावा नहीं देगा? सुप्रीम कोर्ट में दहेज उत्पीड़न तथा एससी-एसटी कानून के दुरुपयोग से बेजा गिरफ्तारियों को रोकने के लिए अनेक दिशा-निर्देश जारी किये, जिन पर अब कानूनी विवाद है। रेप के विरुद्ध अनेक सख्त कानून हैं, पर उनका पालन नहीं होता, इसलिए उन्नाव और कठुआ में कानून नहीं, बल्कि व्यवस्था विफल हुई है।

व्यवस्था को सुदृढ़ करने की बजाय, सख्त कानून लाने से भ्रष्टाचार और मुकदमेबाजी के मामले बढ़ेंगे। नये अध्यादेश में अग्रिम जमानत के प्रावधान को निरस्त करने से क्या एक और उत्पीड़क कानून का सृजन किया जा रहा है?

भारत में मौत की सजा के सख्त प्रावधान के बावजूद उन अपराधों में कमी नहीं दिखती है। पिछले कई सालों में सिर्फ सात लोगों को फांसी हुई है, तो फिर फांसी की सजा के प्रावधान से रेप के बढ़ते मामलों पर कैसे लगाम लगेगी?

### क्या है पॉक्सो एक्ट?

- पॉक्सो, यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण करने संबंधी अधिनियम (Protection of Children from Sexual Offences Act – POCSO) का संक्षिप्त नाम है।
- पॉक्सो एक्ट के तहत नाबालिग बच्चों के साथ होने वाले अपराधों के मामलों में कार्रवाई की जाती है। इसके तहत बच्चों को यौन उत्पीड़न, यौन शोषण और पोर्नोग्राफी जैसे गंभीर अपराधों से सुरक्षा प्रदान की जाती है।
- 2012 में बने पॉक्सो एक्ट के तहत अलग-अलग अपराध के लिए अलग-अलग सजा का प्रावधान है। जिसका सख्ती से पालन किया जाना भी सुनिश्चित किया गया है।

### पॉक्सो एक्ट में सजा

- इस कानून की धारा 3 के तहत पेनेट्रेटिव 'सेक्सुअल असॉल्ट' को परिभाषित किया गया है।
- पॉक्सो एक्ट की धारा 4 में बच्चे के साथ दुष्कर्म या कुकर्म के मामले को शामिल किया गया है। जिसके तहत 7 साल से लेकर उम्रकैद और अर्थदंड का प्रावधान है।
- पॉक्सो एक्ट की धारा 6 के अधीन वे मामले लाए जाते हैं जिनमें बच्चों को दुष्कर्म या कुकर्म के बाद गम्भीर चोट पहुंचाई गई हो। इसमें दस साल से लेकर उम्रकैद तक की सजा हो सकती है और साथ ही जुर्माना भी लगाया जा सकता है।
- इस अधिनियम की धारा 7 और 8 के तहत वे मामले शामिल किए गए हैं, जिनमें बच्चों के गुप्तांग से छेड़छाड़ की जाती है। इस धारा में पाए गए दोषियों को 5 से 7 साल तक की सजा और जुर्माना का प्रावधान है।
- वहीं पॉक्सो एक्ट की धारा-11 में बच्चों के साथ सेक्सुअल हैरेसमेंट को परिभाषित किया गया है। जिसके तहत अगर कोई व्यक्ति बच्चों को गलत नियत से छूता है या सेक्सुअल हरकतें करता है या उसे पोर्नोग्राफी दिखाता है तो उसे इस धारा के तहत 3 साल तक कैद की सजा हो सकती है।
- बता दें कि 18 साल से कम उम्र के नाबालिग बच्चों के साथ किया गया किसी भी तरह का यौन व्यवहार इस कानून के अन्तर्गत आता है।
- पॉक्सो एक्ट लड़के और लड़कियों को समान रूप से सुरक्षा प्रदान करता है। वहीं इस कानून के तहत रजिस्टर मामलों की सुनवाई विशेष अदालत में होती है।

### संवैधानिक मौलिक अधिकार

- भारतीय संविधान के प्रावधान के अनुसार पुरुषों की तरह सभी क्षेत्रों में महिलाओं को बराबर अधिकार देने के लिए कानूनी स्थिति है। भारत में बच्चों और महिलाओं के उचित विकास हेतु इस क्षेत्र में महिला और बाल-विकास अच्छे से कार्य कर रहा है।
- संविधान के अनुच्छेद-14 में कानूनी समानता, अनुच्छेद-15 (3) में जाति, धर्म, लिंग एवं जन्म स्थान आदि के आधार पर भेदभाव न करना।
- अनुच्छेद-16 (1) में लोक सेवाओं में बिना भेदभाव के अवसर की समानता। अनुच्छेद-19 (1) में समान रूप से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता।
- अनुच्छेद-21 में स्त्री एवं पुरुषों दोनों को प्राण एवं दैहिक स्वाधीनता से वंचित न करना।
- अनुच्छेद-23-24 में स्त्री एवं पुरुष दोनों को ही शोषण के विरुद्ध अधिकार समान रूप से प्राप्त।
- अनुच्छेद-25-28 में धार्मिक स्वतंत्रता दोनों को समान रूप से प्राप्त।
- अनुच्छेद-29-30 में शिक्षा एवं संस्कृति का अधिकार।
- अनुच्छेद-32 में संवैधानिक उपचारों का अधिकार।
- अनुच्छेद-39(घ) में पुरुषों एवं स्त्रियों दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन का अधिकार।
- अनुच्छेद-42 महिलाओं हेतु प्रसूति सहायता प्राप्ति की व्यवस्था।
- अनुच्छेद-51(क)(ड) में भारत में सभी लोग ऐसी प्रथाओं का त्याग करें जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हो।
- अनुच्छेद-33 (क) में प्रस्तावित 84वें संविधान संशोधन के जरिए लोकसभा में महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था।
- अनुच्छेद-332 (क) में प्रस्तावित 84वें संशोधन के जरिए राज्यों की विधानसभाओं में महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था है।
- गर्भावस्था में ही मादा भ्रूण हत्या करने के उद्देश्य से लिंग परीक्षण को रोकने हेतु पूर्व निदान तकनीक अधिनियम, 1994 निर्मित किया गया। इसका पालन न करने वालों को 10-15 हजार रुपए का जुर्माना तथा 3-5 साल तक की सजा का प्रावधान किया गया है। दहेज जैसे सामाजिक अभिशाप से महिला को बचाने के लिए 1961 में 'दहेज निषेध अधिनियम' बनाया गया। 1986 में इसे भी संशोधित कर समयानुकूल बनाया गया।

### संभावित प्रश्न

प्रश्न. हाल ही में बलात्कार जैसे जघन्य अपराध पर नियंत्रण पाने हेतु सरकार द्वारा लाये गये मृत्युदंड जैसे कठोर दण्ड के प्रावधान को स्पष्ट करते हुए बताये कि क्या यह कानून इस समस्या के निदान हेतु प्रभावी साबित होगा? तर्क सहित उत्तर प्रस्तुत कीजिये।

(250 शब्द)



# मानवीयता : रासायनिक हमला

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-2 (अंतर्राष्ट्रीय संबंध) से संबंधित है।

हाल ही में मानवता को शर्मसार करने वाली घटना, सीरिया में हुई जहाँ विद्रोही गुटों के कब्जे वाले इदल्लिब प्रान्त में रासायनिक बम से हमला किया गया। इस संदर्भ में हिन्दी समाचार पत्रों 'पत्रिका', 'जनसत्ता', 'नई दुनिया', 'अमर उजाला', तथा 'दैनिक टिब्यून' में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।

## यह तो मानवीयता के विरुद्ध हमला है (पत्रिका)

सीरिया में विद्रोही गुटों के कब्जे वाले इदल्लिब प्रांत में 4 अप्रैल को रासायनिक बम से हमला किया गया। इसमें करीब 70 लोगों के मारे जाने की जानकारी मिली है। आश्चर्य की बात यह है कि यह हमला अपने ही देश में अपने ही नागरिकों पर किया गया। सीरिया में रासायनिक बम हमले की यह पहली घटना नहीं थी। इससे पूर्व भी गृह युद्ध में सरकारी सेनाएं व इस्लामिक स्टेट (आईएस) समर्थित विद्रोही गुट एक-दूसरे पर रासायनिक हथियारों का इस्तेमाल करते रहे हैं।

संयुक्त राष्ट्र के संगठन 'ऑर्गेनाइजेशन फॉर द प्रोहिबिशन ऑफ केमिकल वेपन के अनुसार पिछले एक साल में वहां सरकारी सेनाओं ने विद्रोहियों पर तीन से चार बार विभिन्न घातक गैसों का रासायनिक हथियारों के रूप में इस्तेमाल किया। संयुक्त राष्ट्र ने ताजा रासायनिक हमले की जांच प्रारंभ कर दी है। हालांकि पूर्व की तरह ही सरकारी सेनाओं ने इन हमलों में अपना हाथ होने से साफ तौर पर इनकार कर दिया। हम कैसे भुला सकते हैं कि इन हमलों में विद्रोहियों के साथ-साथ निर्दोष नागरिक व मासूम बच्चे भी अपनी जानें गंवाते रहे हैं। ये रासायनिक बमों से किए जाने वाले हमले न सिर्फ वहां के नागरिकों के लिए खतरनाक साबित होते रहे हैं बल्कि उस पूरे क्षेत्र के पर्यावरण और वनस्पति को भी बर्बाद कर देते हैं। ताजा हमलों में राष्ट्रपति समर्थक सैन्य बलों ने क्लोरीन गैस वाले बार्बिक बमों का हवाई हमलों में इस्तेमाल किया।

इस गैस के इस्तेमाल से प्रभावित व्यक्ति का दम घुटने लगता है व चिकित्सकीय मदद मिलने से पहले ही उसकी मौत हो जाती है। वहीं दूसरी ओर, विद्रोही गुट मस्टर्ड गैस का इस्तेमाल करते रहे हैं जिससे शरीर पर फफोले निकल आते हैं। इन हमलों में होने वाली मौतें बहुत ही तकलीफदेह होती हैं व जो बच जाते हैं उन्हें भी कई गंभीर बीमारियां जकड़ लेती हैं। लेकिन, सवाल यहाँ खड़ा होता है कि क्या विद्रोही गुट किसी खतरनाक रासायनिक बम का इस्तेमाल कर रहा है, तो क्या सीरिया की सरकारी सेना को भी इसी तरह के हथियारों का इस्तेमाल करना चाहिए? मेरा मानना है कि रासायनिक हथियारों के इस्तेमाल को न्यूक्लियर हथियारों की श्रेणी में तो नहीं रखा जाता लेकिन इसके दीर्घकालीन घातक प्रभावों को देखते हुए इसका इस्तेमाल बिल्कुल नहीं होना चाहिए। यह दुश्मन पर हमला नहीं बल्कि मानवीयता पर हमला है।

ऐसा लगता है कि सीरिया के राष्ट्रपति बशर अल असद का शासन व सरकारी सेना पर नियंत्रण नहीं रह गया है। वहां पूर्णतः अराजकता का माहौल है। आपको याद दिला दूँ कि संयुक्त राष्ट्र ने

## संतुलित रुख (जनसत्ता)

भारत ने सीरिया में रासायनिक हथियारों के इस्तेमाल की आशंका के मद्देनजर दुनिया भर में उठ रहे सवालों के बीच जो रुख अपनाया है वह पूरी तरह वाजिब और विश्व शांति के तकाजों के अनुरूप है। नीदरलैंड में भारतीय राजदूत वेणु राजमणि ने रासायनिक हथियार निषेध संगठन (ओपीसीडब्ल्यू) की कार्यकारी परिषद की बैठक में कहा कि भारत रासायनिक हथियारों के एकदम खिलाफ है, पर इसके कथित इस्तेमाल से जुड़े विषयों की जांच पूरी तरह से रासायनिक हथियार संधि के अनुरूप ही होनी चाहिए। सीरिया की बशर अल-असद सरकार पर यह आरोप है कि उसने अपने घरेलू विद्रोहियों के खिलाफ रासायनिक हथियार इस्तेमाल किए। इसी बिना पर पिछले दिनों अमेरिका और ब्रिटेन तथा फ्रांस ने सीरिया पर मिसाइलों से हमला किया, और यह दावा किया कि केवल उन जगहों को निशाना बनाया गया जहाँ रासायनिक हथियार छिपा कर रखे गए थे।

इस सैन्य कार्रवाई ने दुनिया में बड़े पैमाने पर सामरिक टकराव का अदेशा पैदा कर दिया, क्योंकि सीरिया अकेला नहीं है, रूस भी उसके साथ खड़ा है और 2015 से वहाँ रूस की फौजी मौजूदगी भी है। लेकिन सवाल यह है कि क्या सचमुच सीरिया ने अपने विद्रोहियों के खिलाफ रासायनिक हथियार इस्तेमाल किए थे? इसकी मुकम्मल जांच होनी चाहिए। लेकिन अंतरराष्ट्रीय पर्यवेक्षकों के अपनी रिपोर्ट देने से पहले ही अमेरिका ने हमला बोल दिया। जबकि रासायनिक हथियारों का भंडारण और इस्तेमाल रोकने के लिए बाकायदा एक वैश्विक संस्था ओपीसीडब्ल्यू यानी 'ऑर्गेनाइजेशन फॉर द प्रोहिबिशन ऑफ केमिकल वीपन्स' है, जो कि सीडब्ल्यूसी यानी 'केमिकल वीपन्स कनवेंशन' नामक संधि की देन है।

यह संधि एक तरह से 1925 में रासायनिक हथियारों के खिलाफ बने जेनेवा प्रोटोकॉल का विस्तार है। रासायनिक और जैविक हथियारों को प्रतिबंधित करने की बाबत वैश्विक करार की पहल 1968 में हुई, अठारह देशों की सदस्यता वाली निरस्त्रीकरण समिति के भीतर। सितंबर 1992 में इस समिति ने संयुक्त राष्ट्र महासभा को एक रिपोर्ट सौंपी, जिसमें रासायनिक हथियारों पर रोक लगाने की वैश्विक संधि का प्रस्तावित मसौदा भी था। फिर, महासभा ने उसी साल नवंबर में संधि को मंजूरी दे दी, और इसे तमाम देशों के हस्ताक्षर के लिए जारी कर दिया गया। दुनिया के 192 देश इस संधि को स्वीकार कर चुके हैं। जाहिर है, लगभग सारी दुनिया इस संधि को मानती है। न मानने वाले अपवाद हैं। मसलन, इजराइल ने इस संधि पर हस्ताक्षर तो किए हैं, पुष्टि नहीं की है। उत्तर कोरिया, मिस्र और दक्षिण सूडान ने तो हस्ताक्षर भी नहीं किए हैं। विडंबना यह है कि जिस सीरिया पर रासायनिक

मानवता के लिए दुष्परिणामों की भयावहता को देखते हुए रासायनिक हथियारों के निर्माण, इसके संग्रहण व उपयोग की रोकथाम के लिए 1968 में सदस्य देशों का सम्मेलन बुलाया। लेकिन, कई वर्षों की बहस के बाद 1997 में नीदरलैंड के हेग में संधि को अमलीजामा पहनाकर पूरे विश्व में लागू किया जा सका। इस संधि को रासायनिक हथियार रोकथाम संधि (सीडब्ल्यूसी) कहा जाता है। संधि को लागू कराने व इसकी निगरानी का जिम्मा ऑर्गेनाइजेशन फॉर द प्रोहिबिशन ऑफ केमिकल वेपन (ओपीसीडब्ल्यू) को दिया गया।

संधि के अनुसार ओपीसीडब्ल्यू की निगरानी में विभिन्न देशों के पास उपलब्ध रासायनिक हथियारों के जखीरे को न सिर्फ नष्ट करना था बल्कि नए देशों को रासायनिक हथियार बनाने से भी रोकना था। सीरियाई सरकार ने भी 2013 में सीडब्ल्यूसी संधि पर अधिकारिक रूप से हस्ताक्षर कर रासायनिक हथियारों का इस्तेमाल न करने का वादा किया था। अक्टूबर 2016 तक विश्व के 93 प्रतिशत देशों ने यह घोषित कर दिया कि उन्होंने अपने रासायनिक हथियार पूर्णतः नष्ट कर दिए हैं। भारत ने भी 1997 में संधि पर दस्तखत किए।

इसके साथ ही हमने भी संधि की शर्त के मुताबिक अपने रासायनिक हथियार इस शर्त के साथ नष्ट कर दिए कि अगर उस पर कोई देश रासायनिक हथियारों का इस्तेमाल करेगा तो अपनी रक्षा के लिए हम भी नाभिकीय हथियारों का उपयोग करने को स्वतंत्र होंगे। लेकिन, यह सारी बातें विरोधी को यह जताने के लिए होती है कि हम किसी भी स्थिति में कमजोर नहीं हैं। इन सारी बातों को मानसिक और कूटनीतिक दबाव के लिए इस्तेमाल किया जाता है लेकिन युद्ध की परिस्थिति में भी ऐसे हथियारों का इस्तेमाल नहीं किया जाता।

जहां तक सीरिया के हालात का सवाल है तो ऐसा लगता है कि वहां के अराजक माहौल में सरकार को मानवीयता की चिंता ही नहीं है। वह जैसे-तैसे विद्रोही गुटों को समाप्त कर सत्ता बरकरार रखने में जुटी है। युद्ध के दौरान भी अंतरराष्ट्रीय संधियों को मानना होता है, सरकार इसे शायद समझने की मनःस्थिति मंत भी नहीं है। जहां तक विद्रोही गुटों का सवाल है, तो उनसे मानवीयता और संधि की उम्मीद करना ही बेमानी है। वहां दोनों पक्षों द्वारा रासायनिक हथियारों का इस्तेमाल रुके और निर्दोषों की जान बच सके, इसके लिए रूस और अमेरिका जैसी महाशक्तियों को आपसी मतभेद भुलाकर काम करना होगा।

### त्रासदी का हमला (नईदुनिया)

किसी भी युद्ध में विमानों के जरिए बम-बारूद या बाकी व्यापक विनाश वाले हथियारों का इस्तेमाल अब कोई हैरानी नहीं पैदा करता। दूसरे हथियारों से बचने के लिए लोग तात्कालिक तौर पर कोई ठिकाना ढूँढते हैं, कभी कामयाब भी होते हैं, लेकिन रासायनिक गैसों के हमले की जद में आए लोगों के पास बचने का कोई विकल्प नहीं होता, सिवाय इसके कि हवा में घुली जहरीली गैसों की चपेट में आकर वे तड़प-तड़प कर मर जाएं। सीरिया में इदलिब प्रांत पर हुआ हमला ऐसा ही था, जिसमें दर्जनों बच्चों सहित सौ से ज्यादा लोगों की जान चली गई और करीब चार सौ घायल ज़िंदगी और मौत से जूझ रहे हैं। सीरिया में चल रहा गृहयुद्ध एक ऐसे दौर में है, जब सरकार और विद्रोहियों के बीच की लड़ाई में शायद किसी भी पक्ष को इस बात का खयाल रखना जरूरी नहीं लग रहा है कि उनके किस हमले से किसकी मौत होगी! युद्ध अब चरम त्रासद शकल अख्तियार कर चुके हैं।

विचित्र यह है कि दुनिया के जो देश सीरिया में सरकार या विद्रोहियों के पक्ष में खड़े हैं या फिर किसी न किसी रूप में उनकी

हथियार रखने और उसका इस्तेमाल करने का आरोप लगा है वह भी संधि पर हस्ताक्षर कर चुका है। संधि के तहत रासायनिक हथियारों का बड़े पैमाने पर उत्पादन, भंडारण और इस्तेमाल प्रतिबंधित है।

एक बहुत सीमित मात्रा में छूट दी गई है, चिकित्सा और वैज्ञानिक अनुसंधान के मकसद से। समस्या यह है कि कई जहरीले रसायनों का दुनिया भर में बड़े पैमाने पर उत्पादन और स्थानांतरण होता है, जो प्रतिबंधित नहीं है, क्योंकि वे औद्योगिक उत्पाद बनाने या औद्योगिक प्रक्रियाओं में काम आते हैं। लिहाजा, रासायनिक हथियारों पर रोक लगाने की कठिनाई वैसी ही है जैसी परमाणु हथियारों का प्रसार रोकने की। जिस तरह परमाणु ऊर्जा का शांतिपूर्ण उपयोग भी है उसी तरह अनेक विपैले रसायनों का भी औद्योगिक उपयोग होता है। लेकिन दुनिया में अगर कहीं रासायनिक हथियार रखने या उसका इस्तेमाल किए जाने की सूचना मिलती है या वैसा आरोप सामने आता है, तो संधि को क्रियान्वित करने वाली संस्था यानी ओपीसीडब्ल्यू को मौके पर जाकर जांच करने का अधिकार है। कार्रवाई की बात उसके बाद आती है। भारत ने जहां रासायनिक हथियारों के खिलाफ होने की बात कह कर सीरिया को सख्त संदेश दिया है, वहीं संधि के प्रावधानों के अनुपालन का प्रश्न उठा कर अमेरिका व उसके मित्र देशों को भी यह जताया है कि उन्हें मनमर्जी करने से बाज आना चाहिए।

### सीरिया में उलझा अमेरिका (अमर उजाला)

डाउमा शहर में इसी महीने सात अप्रैल को किए गए रासायनिक हमले के बाद से पश्चिमी जगत भयाक्रांत है। लंदन में स्क्रीपल पर हुए हमले से उपजा गुस्सा अभी शांत भी नहीं हुआ है। ट्रंप ने कार्रवाई की बात की थी और रूस ने खामियाजा भुगतने की धमकी दी थी। अमेरिका के लिए सीरिया वह जगह है, जहां वह इस कदर फंस गया है, जहां से उसे निकलने का रास्ता नहीं दिख रहा है। ट्रंप ने हाल ही में इस देश से अमेरिकी फौज की वापसी का एलान किया था, मगर उन्हें अपने इस फैसले को टालने को मजबूर होना पड़ा। जवाबी हमले के जरिये ट्रंप ने पीड़ितों के प्रति अपना समर्थन तो जताया ही इसके जरिये अमेरिकी सैनिकों की वापसी की अपनी नाकामी से भी ध्यान बंटाने में सफल हो गए।

अभी तकरीबन दो हजार अमेरिकी सैनिक सीरियन डेमोक्रेटिक फोर्स (एसडीएफ) के साथ पूर्वी सीरिया में तैनात हैं। एसडीएफ एक कुर्द लड़ाका गुट है, वहीं अमेरिकी सैनिकों में ज्यादातर विशेष बल के जवान और इंजीनियर शामिल हैं। इन लोगों ने अधिकांश क्षेत्र को आईएस से मुक्त करा लिया है। यूफ्रेट्स नदी के एक ओर अमेरिकी समर्थित सीरिया के विद्रोही हैं, तो दूसरी ओर रूस और ईरान समर्थित सीरिया की सरकारी सेना। अमेरिका को एहसास है कि यदि वह वहां से वापस जाता है, तो सीरियाई सेना रूस और ईरान के समर्थन से उन हिस्सों पर दोबारा कब्जा कर लेगी, जहां अभी अमेरिका समर्थित एसडीएफ ने कब्जा कर रखा है। इसके साथ ही तुर्की भी अपनी सीमाओं को सुरक्षित करने के लिए वहां इन बलों को तबाह करना चाहेगा। जाहिर है, ट्रंप के शेखी बघारने और प्रलाप करने के बावजूद अमेरिका लंबे समय तक सीरिया में उलझा रहेगा।

अमेरिका ने जब सीरिया पर हमले की घोषणा की तो ब्रिटेन और फ्रांस ने तुरंत ही उसे समर्थन दिया। रूस की धमकियों और युद्धोन्माद भड़काने के बावजूद 14 अप्रैल की सुबह वहां हमला किया गया, जिसमें तीन जगहों को निशाना बनाया गया। पश्चिमी मीडिया के मुताबिक, ये वे जगहें थीं, जिनका संबंध सीरिया के रासायनिक हथियारों से है। कुल 110 मिसाइलें दागी गईं। सीरिया ने दावा किया कि उसकी प्रतिरक्ष प्रणाली ने अधिकांश मिसाइलों को हवा में ही

मदद कर रहे हैं, वे अब कह रहे हैं कि रासायनिक हथियारों से हमले अनुचित हैं। सवाल है कि अगर युद्ध में दोनों पक्षों के पास रासायनिक हथियार हैं और दोनों को एक दूसरे पर हमला करने के लिए किसी भी तरह की नैतिकता का पालन करना जरूरी नहीं लग रहा हो तो किससे यह उम्मीद की जाएगी कि वह उचित-अनुचित का खयाल रखे? यह कोई पहला मौका नहीं है जब सीरिया के गृहयुद्ध में शत्रु पक्ष को खत्म करने या पीछे धकेलने के लिए रासायनिक हथियारों का इस्तेमाल हुआ हो। अगस्त, 2013 में सीरिया के घौटा में सैरिन नामक रासायनिक गैस के जरिए हुए हमले में जब करीब दो हजार लोगों की जान चली गई, तब दुनिया भर में इस हथियार का इस्तेमाल करने के लिए विद्रोहियों के साथ-साथ सीरियाई सरकार को भी कठघरे में खड़ा किया गया था। हालांकि फिर सीरिया ने उस संधि में शामिल होने के लिए संयुक्त राष्ट्र में आवेदन पेश किया था, जिसके तहत रासायनिक हथियारों के उत्पादन और संग्रह पर प्रतिबंध लगाने और मौजूदा जखीरे को नष्ट करने की व्यवस्था है।

लेकिन उसके चार साल बाद भी वहां के हालात में कोई फर्क नहीं आया है। ताजा हमले के लिए भी सीरिया सरकार को जिम्मेदार बताया गया है। लेकिन जहां सीरिया सरकार ने इस आरोप को खारिज किया, वहीं सीरिया के समर्थक रूस ने हमले के ठिकाने पर विद्रोहियों की ओर जमा रासायनिक हथियारों का हवाला दिया। इसके पहले संयुक्त राष्ट्र भी यह चेतावनी जारी कर चुका है कि दुनिया का सबसे खूंखार आतंकी संगठन आइएस रासायनिक हमला करने की क्षमता रखता है। करीब छह साल से सीरिया में चल रहे गृहयुद्ध में अब तक लाखों लोग मारे जा चुके हैं। वहां के लोगों की जिंदगी जहां हर पल मौत से रूबरू है, वहीं युद्ध के चलते हो रहा विस्थापन एक भयावह त्रासदी रच रहा है। सीरिया की सरकार और विद्रोही गुटों को अपने आप से यह पृष्ठना चाहिए कि आखिर वे किसके हक में युद्ध कर रहे हैं! अगर इतने बड़े पैमाने पर नागरिकों की जान जा रही है तो वहां बाद में किस बात पर खुशी मनाई जा सकेगी?

### हमले का औचित्य (दैनिक ट्रिब्यून)

एक दशक से गृहयुद्ध की मार झेल रहे सीरिया में मंगलवार को हुए रासायनिक हमले के बाद अमेरिका द्वारा किये गये मिसाइल हमले ने सीरिया के लोगों की मुश्किलें बढ़ाई हैं। महाशक्तियों की महत्वाकांक्षाओं के बीच सेंडविच बना सीरिया इस सदी की सबसे बड़ी मानवीय त्रासदी झेल रहा है। सीरिया में अमेरिका की सबसे बड़ी कार्रवाई से पहले सीरिया में तकरीबन चार लाख लोगों की मौत हो चुकी है। संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट के अनुसार करीब पचास लाख लोग देश छोड़कर जा चुके हैं और साठ लाख बेघर हुए हैं। ऐसे में सीरिया में विद्रोहियों के कब्जे वाले इदल्लिब में सदिग्ध रासायनिक हमले में करीब 86 लोगों की मौत ने पूरी दुनिया का ध्यान खींचा। मगर जिस तेजी से इस घटनाक्रम पर अमेरिका, नाटो देशों और संयुक्त राष्ट्र से प्रतिक्रिया आई, उसे देखकर कयास लगाये जा रहे थे कि अमेरिकी कार्रवाई की भूमिका तैयार हो रही है। सीरिया सरकार लगातार कहती रही है कि रासायनिक हमले में उसकी कोई भूमिका नहीं रही है।

अभी यह स्पष्ट नहीं हो पाया है कि इदल्लिब पर हुए हमले में असद सरकार की भूमिका है या फिर सीरिया में संघर्षरत विद्रोहियों, आईएस, अलकायदा की तरफ से हमला हुआ। सीरिया में इस समय इतने समूह संघर्षरत हैं कि जल्द हमलावर तय करना आसान नहीं है। वैसे जब मैदानी युद्ध व जेनेवा शांति वार्ता में सीरियाई सरकार मजबूत स्थिति में है तो रासायनिक हमले का औचित्य नहीं बनता। सीरिया के

नाकाम कर दिया, जबकि कुछ मिसाइलें लक्ष्य तक पहुंच गईं, जिनमें बारजेह स्थित अनुसंधान केंद्र भी शामिल था। रूस ने दावा किया कि इनमें से एक भी मिसाइल उस देश में स्थित रूसी वायुसेना और नौसेना अड्डे तक नहीं पहुंच सकी, जोकि उसकी वायु प्रतिरक्षा प्रणाली की निगरानी में है। अमेरिका का कहना था कि यह सिर्फ एक बार किया गया हमला था और कड़ा संदेश देने के लिए किया गया था।

संयुक्त राष्ट्र से संबद्ध ऑर्गनाइजेशन फॉर द प्रोहिबिशन ऑफ केमिकल वीपन्स (ओपीसीडब्ल्यू) के प्रतिनिधियों ने यह जानने के लिए 21 अप्रैल को डाउमा की यात्रा की कि क्या वाकई वहां रासायनिक हथियारों का इस्तेमाल किया गया है। डाउमा अभी सीरियाई सरकार के कब्जे में है, जबकि विद्रोही वहां से पीछे हट चुके हैं। यह आने वाले समय में ही पता चलेगा कि क्या वाकई वहां उन्हें रासायनिक हथियार मिले या नहीं और क्या उनका उपयोग किया गया था। ऐसी पिछली जांच की तरह यह भी हो सकता है कि यह सब ठंडे बस्ते में चला जाए।

सीरिया ने चार साल पहले अपने सारे रासायनिक हथियार समर्पित कर दिए थे। यदि किसी रासायनिक फैक्टरी या फिर ऐसी सामग्री के भंडार की जगह या इससे संबंधित सक्रिय शोध स्थल पर भी कोई हमला किया जाए तो वहां से रासायनिक का रिसाव होगा या फिर उस क्षेत्र में ऐसी धुंध जरूर छाएगी, जिसकी शिनाख्त आसानी से की जा सके। जहां पर ये स्थित थे, वहां तो बस्ती भी है, जिससे ऐसे किसी हमले से नागरिकों का मारा जाना भी तय है। मगर इस हमले में ऐसा कुछ नहीं हुआ, जिससे संभव है कि यह हमला खाली पड़े भवनों पर किया गया।

पश्चिमी ताकतों द्वारा इस हमले के बारे में जिस तरह के बढ़ा-चढ़ा कर दावे किए गए, उससे तो वहां काफी मौतें होनी चाहिए थी और ऐसा नुकसान होना चाहिए था, जिसकी भरपाई न हो सके। सीरिया ने सिर्फ तीन लोगों के घायल होने की सूचना दी है, जिससे इस हमले की प्रकृति और इरादे का पता चलता है। इस बात की पूरी संभावना है कि तनाव न बढ़ाने के लिए रूस को दी गई चेतावनी सीरिया के पक्ष में काम कर गई, जिससे वह अपनी मानवशक्ति को वहां से हटाने में सफल हो गया हो, लेकिन यदि वहां रासायनिक हथियारों का भंडार होता, तो उनकी तबाही के कुछ तो प्रमाण मिलते। अमेरिका इस हमले के एक पखवाड़े बाद भी यही दावा कर रहा है कि वह स्थिति का आकलन कर रहा है, इससे तो लगता है कि या तो यह हमला नाकाम था या फिर यह उसकी कोई चाल थी। पश्चिम जगत बरसों से सीरिया में असद को बेदखल करने का प्रयास कर रहा है, लेकिन उसे एहसास हो गया होगा कि रूस और ईरान के समर्थन के कारण वह सफल नहीं होगा। सीरिया में रूस और ईरान ने अपने सैन्य अड्डे बनाकर पश्चिम के लिए मुश्किलें खड़ी कर दी हैं।

इस्माइल, जिसकी सरहद सीरिया से मिलती है और जिसने हाल ही में ईरान पर मिसाइलें दागी थीं, चौकन्ना होने के साथ ही चुप्पी साधे हुए है। उसकी सबसे बड़ी परेशानी क्षेत्र में ईरान का बढ़ता प्रभाव और पकड़ है। इसलिए वह रूस और तुर्की से बात कर रहा है, ताकि ईरान को नियंत्रित रखा जा सके। इस खेल का नया खिलाड़ी सरुदी अरब है, जोकि अमेरिका के साथ सैनिकों की तैनाती पर बात कर रहा है। ऐसा लगता है कि सीरिया पर किया गया मिसाइल हमला दुनिया को पश्चिम की चिंता से वाकिफ करवाने के लिए किया गया था, मगर यह असद को बेदखल न कर पाने की हताशा भी थी। इसलिए फ्रांसीसी राष्ट्रपति मेक्रों ने जब यह कहा कि इस हमले से कोई समाधान नहीं निकलेगा और यह सिर्फ अंतरराष्ट्रीय समुदाय के सम्मान के लिए किया गया था, तो लगता है कि संभवतः वही ऐसे नेता हैं, जिसने इस बारे में सच कहा।



विदेश मंत्री का कहना है कि संयुक्त राष्ट्र को भेजे गये सैकड़ों पत्रों में कहा जा चुका है कि आईएस के पास रासायनिक हथियारों का जखीरा है। ऐसे में अमेरिकी हमलों से कुछ हासिल होगा, कहना कठिन है। यह हमला कुछ वैसा ही है जैसा बिल क्लिंटन के शासनकाल में वर्ष 1998 में अमेरिका ने ओसामा बिन लादेन की तलाश में किया था। उसके बाद ओसामा 2001 में अमेरिका पर हमला करने में सफल रहा था। इतना जरूर है कि इस हमले के बाद मध्य पूर्व में अमेरिकी दखल बढ़ गई है। वहीं रूस व ईरान से अमेरिकी रिश्तों में खटास जरूर आ गई है। हमले को लेकर रूस ने तल्लख प्रतिक्रिया दी है। इतना ही नहीं, रूस ने अमेरिका के साथ सीरिया की वायु सीमा के लिये की गई एक संधि को निलंबित कर दिया है।

### संभावित प्रश्न

प्रश्न. रासायनिक हथियारों के इस्तेमाल पर लगे अंतरराष्ट्रीय प्रतिबंध को बनाए रखने के लिए अमेरिका व अन्य राष्ट्रों द्वारा सीरिया पर किये गये हमले की प्रासंगिकता को स्पष्ट करते हुए इसके वैश्विक प्रभावों की चर्चा कीजिये।

(250 शब्द)

## GS World टीम...

### चर्चा में क्यों?

- अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस द्वारा सीरिया में किए गए मिसाइल हमलों के बाद विश्व मंच दोफाड़ हो गया है। एक तरफ जहां ब्रिटेन, फ्रांस, आस्ट्रेलिया, इस्त्राइल, जर्मनी, तुर्की, जार्डन, इटली, जापान, सऊदी अरब समेत तमाम देश अमेरिका के साथ खड़े नजर आ रहे हैं, वहीं काफी आक्रामक तेवर अख्तियार कर चुके रूस के साथ ईरान, चीन हैं। ये सीरिया के राष्ट्रपति बशर अल असद का साथ दे रहे हैं। अमेरिका समेत अन्य देशों ने यह हमला सीरिया में हुए रासायनिक हमले के जवाब में किया है।

### सीरियाई शहर डूमा पर क्यों हुआ हमला?

- फरवरी माह में सीरिया के राष्ट्रपति बशर अल असद ने पूर्वी गूटा में विद्रोही लड़ाकों के खिलाफ कार्रवाई करते हुए उन्हें खदेड़ने के मकसद से एक अभियान की शुरुआत की थी। इस अभियान में 1700 नागरिकों के मारे जाने की खबरें आईं।
- मार्च में सेना ने इस इलाके को तीन टुकड़ों में बांट दिया। सबसे बड़ा इलाका डूमा का था, जहाँ 80 हजार से लेकर डेढ़ लाख लोग रह रहे थे। अन्य दो स्थानों पर रह रहे विद्रोहियों ने अपना इलाका छोड़ना शुरू कर दिया, लेकिन डूमा पर जाएश अल-इस्लाम ने अपना नियंत्रण बरकरार रखा। इसके बाद 6 अप्रैल को सरकार के साथ हुई बातचीत के बाद इस इलाके में हवाई हमले किए गए।

### क्या कहता है अंतराष्ट्रीय कानून?

- संयुक्त राष्ट्र संघ देशों को स्वरक्षा के लिए सेना का इस्तेमाल करने की छूट देता है। साथ ही अगर सरकार ही अपने लोगों के खिलाफ हो जाए तो उनकी सुरक्षा के लिए भी। इसके अलावा अंतरराष्ट्रीय सुरक्षा को बनाए रखने के लिए भी बल का इस्तेमाल किया जा सकता है। हालांकि इस तरह की किसी भी कार्रवाई की कितनी जरूरत है, यह एक अहम मुद्दा है।
- हालांकि यह व्यवस्था सिर्फ इसलिए है कि हमले के दौरान देश अपनी सुरक्षा को सुनिश्चित कर सकें लेकिन सिर्फ राजनैतिक इस्तेमाल के लिए इसका प्रयोग नहीं किया जा सकता है। 1945 से लागू अंतरराष्ट्रीय कानून प्रतिशोध के लिए किसी भी तरह के सैन्य हमले का विरोध करता है।
- 1981 में इजराइल ने इराक के ओसिराक न्यूक्लियर रिपेक्टर पर हमला कर दिया था, जिसकी संयुक्त राष्ट्र संघ ने काफी

आलोचना की थी। इस पर इजराइल ने यह दलील दी थी कि यहां ऐसे हथियार बन सकते थे जो भविष्य में एक बड़े जनमानस के लिए खतरनाक साबित हो सकते थे। इसके अलावा एक कथित रासायनिक हमले के बदले 1988 में अमरीका द्वारा सूडान पर हमले की भी कड़ी निंदा की गई थी।

- इस मामले में ब्रिटेन, अमेरिका और फ्रांस ने यह दलील दी है कि वो सीरिया को यह याद दिलाना चाहते थे कि वो रासायनिक हथियार सम्मेलन के तहत तय किए गए दायित्वों को भूले नहीं। सीरिया साल 2013 में इसका हिस्सा बना था।
- यह रासायनिक हथियारों के निर्माण, उसे रखने और इस्तेमाल पर प्रतिबंध लगाता है। 192 देशों ने इस पर हस्ताक्षर किए थे।
- संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के प्रस्ताव 2118 में सीरिया के रासायनिक हथियारों के जखीरे को नष्ट करने की बात कही गई है। जिसका पालन करना सीरिया के लिए अनिवार्य है।

### क्या है सीरिया का संकट?

- 2011 में सीरिया में सिविल वॉर हुआ। कुछ मुठ्ठीभर बच्चों की गिरफ्तारी से शुरू हुआ ये संघर्ष सेकंड वर्ल्ड वॉर के बाद दुनिया के लिए अब तक का सबसे बड़ा ह्यूमन क्राइसिस बन चुका है। इसके बाद जुलाई 2011 में सरकार के खिलाफ आवाज बुलंद करने के लिए सीरियन आर्मी के अफसरों के एक ग्रुप ने सेना छोड़ फ्री सीरियन आर्मी का गठन किया।
- दिसंबर, 2011 से लेकर 2012 तक जगह-जगह सुसाइड बम ब्लास्ट हुए। इसके बाद अल कायदा के लीडर अयमान अल जवाहिरी ने सीरियाई लोगों से जिहाद के लिए आगे आने की अपील की। बीते दो साल में आईएस ने भी अपने आतंकी भेजने शुरू कर दिए।
- 2015 में रूस ने बशर अल-असद को सपोर्ट कर दिया। असद के लिए सीरिया डेमोक्रेटिक फोर्स (एसडीएफ) को रूस और ईरान सपोर्ट कर रहे हैं। वहीं, अमेरिका पर आरोप है कि वह असद के खिलाफ विद्रोहियों की मदद कर रहा है।
- प्रेसिडेंट बशर अल-असद के खिलाफ शुरू हुए हिंसक प्रदर्शनों और संघर्ष में अब तक करीब 4 लाख से ज्यादा लोग अपनी जान गंवा चुके हैं।



# अफ़स्य़ा का अन्त : एक सही निर्णय

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-2 (शासन व्यवस्था) से संबंधित है।

हाल ही में त्रिपुरा, मिजोरम तथा मेघालय से अफ़स्य़ा को हटाया गया है, जो एक सकारात्मक कदम है। इस कानून की आड़ में अब तक कई बेगुनाह नौजवान सैन्य कार्रवाई का शिकार बन चुके हैं। इस संदर्भ में हिन्दी समाचार पत्रों 'प्रभात खबर', 'जनसत्ता', 'दैनिक ट्रिब्यून' तथा 'अमर उजाला' में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।

## अच्छा है अफ़स्य़ा का हटाया जाना (प्रभात खबर)

साल 2000 की घटना थी। मणिपुर के मलोम कस्बे के बस स्टैंड में कुछ लोग अपने गंतव्य के लिए बस का इंतजार कर रहे थे, तभी वहां सेना पहुंची और अचानक दस लोगों को हिरासत में लेकर उन्हें गोलियों से भून डाला।

वहीं इरोम शर्मिला नाम की एक युवती भी थी, जो इस घटना को देख रही थी। उस घटना से विचलित होकर उसने सैन्य विशेषाधिकार कानून (एफएएसपीए- अफ़स्य़ा) को हटाने के लिए सोलह साल तक भूख अनशन किया। इसी तरह 2004 की घटना है। जब जवानों ने मनोरमा नाम की एक युवती का बलात्कार करने के बाद उसकी हत्या कर दी। इसके विरोध में असम राइफल्स के मुख्यालय के बाहर मणिपुरी महिलाओं ने निर्वस्त्र होकर प्रदर्शन किया था।

इस तरह की घटनाओं ने सैन्य विशेषाधिकार कानून को और अधिक विवादित बना दिया। इस कानून से सबसे ज्यादा मानवाधिकारों का उल्लंघन हुआ और पूर्वोत्तर के नागरिक इस कानून को हटाने जाने के विरुद्ध लगातार संघर्ष करते रहे हैं। गौरतलब है कि इस सैन्य कानून की आड़ में सैकड़ों फर्जी मुठभेड़ हुए हैं।

इस पर सुप्रीम कोर्ट ने सरकार और सीबीआई को फटकार लगायी और पिछले वर्ष साल 2000 से 2012 तक सेना और पुलिस द्वारा की गयी 1,528 गैर-न्यायिक हत्याओं के मामलों की जांच का निर्देश भी दिया। अब सरकार मेघालय से और अरुणाचल प्रदेश से उसके कुछ जिलों को छोड़कर अफ़स्य़ा को हटा दिया है।

साल 1958 में बना यह कानून पूर्वोत्तर के सभी राज्यों में शांति और सुरक्षा स्थापित करने के उद्देश्य से अलग-अलग समय पर लगाया गया था।

इस कानून के द्वारा सेना को विशेष अधिकार दिया गया, जिसके तहत वह बिना वारंट के शक के आधार पर किसी को भी गिरफ्तार और पूछताछ कर सकती है। 2004 में मनोरमा हत्याकांड के बाद केंद्र सरकार ने सुप्रीम कोर्ट के पूर्व न्यायाधीश बीपी जीवन रेड्डी की अध्यक्षता में एक समिति गठित की थी, जिसने अपनी अनुशंसा में इस कानून को 'दमन का प्रतीक' बताते हुए इसे निरस्त कर देने की मांग की थी। लेकिन केंद्रीय गृह मंत्रालय ने इस अनुशंसा को खारिज कर दिया था।

## अफ़स्य़ा से राहत (जनसत्ता)

मेघालय से अफ़स्य़ा (सशस्त्र बल विशेषाधिकार अधिनियम) का हटाया जाना एक सकारात्मक कदम है। सेना को विशेषाधिकारों से लैस करने वाले इस बेहद कड़े कानून को पूर्वोत्तर की जनता ने लंबे समय तक एक खतरनाक और दमनकारी कानून के रूप में देखा और झेला है। इस कानून की आड़ में कई बेगुनाह नौजवान सैन्य कार्रवाई का शिकार बने। इसलिए अफ़स्य़ा को हटाने की लंबे समय से मांग होती रही है। मणिपुर की सामाजिक कार्यकर्ता इरोम शर्मिला तो इस कानून के विरोध में सोलह साल तक अनशन पर रहीं। अभी तक मेघालय से लगने वाली असम की सीमा पर चालीस फीसद इलाके में यह कानून लागू था। त्रिपुरा और मिजोरम के बाद मेघालय तीसरा राज्य है जहां से अफ़स्य़ा को पूरी तरह हटा लिया गया है। अरुणाचल प्रदेश में भी इसका दायरा घटा दिया गया है। अरुणाचल में पिछले साल सोलह पुलिस थाना क्षेत्रों में इसे लागू किया गया था, लेकिन अब यह असम से लगने वाली सीमा के आठ थाना क्षेत्रों और म्यांमार सीमा से सटे तीन जिलों में ही लागू रहेगा।

अफ़स्य़ा छह दशक पुराना कानून है। इसे एक सितंबर 1958 को असम, मणिपुर, त्रिपुरा, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, मिजोरम और नगालैंड में लागू किया गया था। इन राज्यों की सीमाएं चीन, म्यांमार, भूटान और बांग्लादेश से मिलती हैं। इन राज्यों को राष्ट्रीय सुरक्षा और कानून-व्यवस्था की दृष्टि से काफी संवेदनशील बताते हुए इस कानून को लागू किया गया था। वर्ष 1986 में हुए मिजो समझौते के तहत मिजोरम में अफ़स्य़ा स्वतः ही खत्म हो गया था। इसके बाद 2015 में कानून-व्यवस्था की समीक्षा के बाद त्रिपुरा से भी अफ़स्य़ा हटा लिया गया। दरअसल, पूर्वोत्तर का उग्रवाद सरकारों के लिए बड़ी चुनौती रहा है। पूर्वोत्तर राज्यों में अलग प्रदेश की मांग को लेकर अलगाववादी संगठन हिंसा का सहारा लेते रहे हैं। इन संगठनों को देश के बाहर से मदद मिलती है, यह तथ्य भी किसी से छिपा नहीं है। अफ़स्य़ा का मूल मकसद उग्रवादी हिंसा को कुचलना था। लेकिन इस कानून की आड़ में नागरिकों पर जो जुल्म हुए, वे रोंगटे खड़े कर देने वाले थे।

जम्मू-कश्मीर में भी अफ़स्य़ा 1990 से लागू है। हालांकि हालात को देखते हुए केंद्र ने वहां से इसे हटाने से इनकार कर दिया है। अफ़स्य़ा के तहत सेना को असीमित अधिकार हासिल हैं। इस कानून के तहत सेना किसी को भी बिना कारण बताए गिरफ्तार कर सकती है, बिना वारंट किसी भी घर की तलाशी ले सकती है। जब ऐसा

यद्यपि इसके बावजूद 2004 में ही मणिपुर सरकार ने कुछ जिलों से इस कानून को हटा दिया था। त्रिपुरा की तत्कालीन माणिक सरकार ने 2015 में उसे त्रिपुरा से हटा दिया था। साल 2015 में नागा विद्रोही गुट एनएससीएन- आइएम महासचिव टी मुईवा और सरकार के बीच हुई बातचीत के बावजूद इसे नागालैंड से नहीं हटाया गया है।

देश की सुरक्षा के नाम पर बने इस कानून से सबसे ज्यादा मानवाधिकारों के उल्लंघन के मामले प्रकाश में आये हैं। अभी यह जम्मू-कश्मीर में सबसे ज्यादा विवादित है। जब सैन्य विशेषाधिकार लागू हो जाता है, तो आम नागरिकों के अधिकार संकुचित होने लगते हैं। यह जनविरोधी होता है।

लोकतांत्रिक व्यवस्था में इसका हमेशा नागरिकों के मौलिक अधिकारों से टकराव होता है। इसका सबसे दुखद पहलू यह होता है कि जिन क्षेत्रों में इस तरह के कानून होते हैं, वहां मीडिया भी एक हद तक सीमित हो जाती है, या एकपक्षीय हो जाती है। इससे सही सूचनाएं नहीं आती हैं। सुरक्षा और शांति के नाम पर 'प्रोपेगंडा' होने लगता है, जिससे एक ओर सैन्य दमन का 'जस्टिफिकेशन' किया जाता है, वहीं दूसरी ओर पीड़ित पक्ष बहुत आसानी से 'उग्रवादी' या 'आतंकी' घोषित कर दिया जाता है।

ऐसे में 'गिरफ्तारी' और 'एनकाउंटर' बहुत आसान हो जाता है, जिसकी सुनवाई भी नहीं होती। पिछले वर्ष सुप्रीम कोर्ट ने ऐसे ही फर्जी मुठभेड़ों की 1,528 मामलों की जांच के निर्देश दिये थे।

अफस्य सुरक्षा और शांति के तर्क पर लागू किया जाता है। सरकार बाहरी घुसपैठ और आंतरिक विद्रोह की संभावनाओं से इसे लागू करती है।

इसी तर्क पर इसे मान्य किया जाता है। लेकिन इस पर हमें बीपी जीवन रेड्डी समिति की अनुशंसा को समझना चाहिए, जिसमें उन्होंने कहा था कि शांति और सुरक्षा कायम करने के लिए सेना रहे, लेकिन यह कानून हटा लिया जाना चाहिए।

सेना का होना एक बात है और सेना को खुली छूट देना दूसरी बात है। मानवाधिकार संगठन इस बात की कड़ी आलोचना करते रहे हैं कि कैसे सैन्य बलों को सशस्त्र खुली छूट दी जा सकती है? ऐसे में नागरिकों के मौलिक अधिकारों का औचित्य क्या रह जायेगा?

अब यदि धीरे-धीरे इसे पूर्वोत्तर से हटाने की बात आगे बढ़ रही है, तो इसे इस रूप में भी देखा जाये कि इससे वहां नागरिक अधिकार बहाल होंगे और लोकतांत्रिक ढांचा मजबूत होगा। पूर्वोत्तर और जम्मू कश्मीर में लोकतांत्रिक मूल्य खस्ताहाल हैं। पूर्वोत्तर के राज्य पहले से ही उपेक्षित महसूस करते रहे हैं।

उनकी राय में केंद्र यानी दिल्ली दायम दर्जे का व्यवहार करता है। अफस्य से उनकी यह धारणा और मजबूत हुई है। ऐसे में सुरक्षा और शांति के नाम पर बहुत समय तक सैन्य दबाव नहीं बनाया जा सकता है, क्योंकि इसका दुष्परिणाम यह होगा कि इससे भारतीय राज्य के प्रति अविश्वास और असंतोष और ज्यादा बढ़ेगा।

पूर्वोत्तर के कुछ क्षेत्रों से अफस्य को हटाने की बात यह उम्मीद जगाती है कि भविष्य में यह देश के सभी क्षेत्रों से हटा लिया जायेगा। ऐसा होना ही हमारे लोकतांत्रिक होने का प्रमाण होगा, अन्यथा हम अब भी उसकी मंजिल से काफी दूर हैं।

कानून हाथ में आ जाता है और उसे इस्तेमाल करने वाले बेलगाम होने लगते हैं और किसी के प्रति उनकी जवाबदेही नहीं बनती तो हालात सुधरने के बजाय अराजक हो जाते हैं। हालांकि गृह मंत्रालय ने अब हालात सुधरने का दावा किया है।

मंत्रालय का कहना है कि पूर्वोत्तर राज्यों में हिंसा में तिरसट फीसद की कमी आई है। उग्रवादी हिंसा में नागरिकों की मौतों में तिरासी फीसद और सुरक्षाकर्मियों की मौतों में चालीस फीसद की गिरावट आई है। वर्ष 2009 में संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद ने भी इसे औपनिवेशिक कानून बताते हुए भारत के सभी हिस्सों से हटाने की मांग की थी। राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए अफस्य को भले जरूरी माना जाए, लेकिन इसकी दमनकारी संभावनाओं को रोकने के लिए क्या संशोधन किए जाएं इस विचार किया जाना चाहिए।

## माहौल में बदलाव (दैनिक ट्रिब्यून)

केंद्र सरकार ने संपूर्ण मेघालय और अरुणाचल प्रदेश के 16 में से आठ थाना क्षेत्रों से आर्म्ड फोर्स स्पेशल पावर एक्ट हटा लिया है। इस स्वागतयोग्य कदम से देश के इस उपेक्षित भाग में एक नई ऊर्जा का संचालन होगा। सरकार का यह निर्णय इन क्षेत्रों में 31 मार्च से लागू हो गया। सरकार ने यह निर्णय विगत 2 दशकों में विद्रोही क्रियाकलापों में 85 प्रतिशत तक कमी आने की वजह से किया है। मेघालय और अरुणाचल प्रदेश में यह अधिनियम 1991 में असम के उल्फा ग्रुप के बढ़ते प्रभाव की वजह से किया था परंतु अभी उल्फा ग्रुप की सरकार से बातचीत के बाद स्थिति काफी बदल गई है। साथ ही एनएससीएन यानी नगा विद्रोहियों ने भी सरकार से समझौता कर लिया है। यद्यपि अभी तक संपूर्ण असम राज्य और मणिपुर में अफस्य अधिनियम लागू था। मणिपुर में भी सिर्फ राजधानी इंफाल म्यूनिसिपल एरिया को मुक्त रखा गया था जबकि पड़ोसी त्रिपुरा में यह पूर्ण रूप से 2015 में हटा लिया गया था। जिस तरह से त्रिपुरा पुलिस ने वहां के छोटे-मोटे विद्रोहों को सफलतापूर्वक संभाला है और साथ ही वहां की जनता में विश्वास पैदा किया है, यह एक अनुकरणीय कदम है।

अफस्य एक्ट भारत सरकार ने 11 सितंबर, 1958 को पारित किया था। यह तत्कालीन समस्याग्रस्त राज्यों जैसे कि नगा पहाड़ी क्षेत्रों और असम के लिए बनाया गया था। विगत कई वर्षों से वहां की कई सामाजिक संस्थाएं एवं मणिपुर की बहुचर्चित नेत्री इरोम शर्मिला इसके खिलाफ लड़ रहे थे। अंततः सरकार ने मिजोरम और अरुणाचल प्रदेश को यह सौगात दे ही दी। अब यदि राज्य सरकारें समझदारी से अपने यहां कानून व्यवस्था को बनाए रखें तो ये राज्य जो कि नैसर्गिक रूप से अत्यंत सुंदर हैं, एक अत्यंत आकर्षक पर्यटन केंद्र बन सकते हैं। परंतु इसके लिए राज्य सरकारों को वहां की जनता और असंतुष्ट गुटों को नियंत्रित करके और उनमें विश्वास पैदा करके एक नया स्वरूप देना होगा। केंद्र सरकार की इच्छा यह है कि ये पूर्वोत्तर राज्य समस्याओं से उबरकर भारत के दक्षिण-पूर्व देशों से संबंध और व्यापार मजबूत करने हेतु एक साधन बनें। ये राज्य जो अब तक उपेक्षा का शिकार थे, अब देश की मुख्यधारा में आकर देश के विकास में सहभागी बनें। केंद्र सरकार ने अपनी पहल अफस्य को हटाकर शुरू कर दी है, शेष दारोमदार राज्य सरकारों के कंधों पर है।

## अफ़स्य़ा के अंत की शुरुआत? (अमर उजाला)

केंद्र सरकार द्वारा सशस्त्र बल विशेषाधिकार कानून यानी अफ़स्य़ा को मेघालय से पूरी तरह हटा लेना एवं अरुणाचल प्रदेश में भी इसे सिर्फ़ तीन जिलों के आठ पुलिस थानों तक सीमित करना बहुत बड़ी घटना है। अफ़स्य़ा खत्म करने के लिए देश में लंबे समय से कई स्तरों पर आंदोलन चलता रहा है।

मणिपुर से इसे खत्म करने के लिए तो इरोम शर्मिला ने सबसे लंबे अनशन का रिकॉर्ड बना दिया। जिस नरेंद्र मोदी सरकार के बारे में धारणा है कि यह कड़े कानूनों तथा सुरक्षा बलों को संरक्षित कानूनों के तहत कार्रवाई में पूरी स्वतंत्रता देने का समर्थक है, उसके दौर में ऐसा निर्णय कुछ लोगों को अर्चभित कर रहा है। सरकार ने 2015 में त्रिपुरा से भी अफ़स्य़ा हटा दिया था। तब से केंद्रीय गृह मंत्रालय पूर्वोत्तर के सारे राज्यों की कानून-व्यवस्था की लगातार समीक्षा करता रहा है। सितंबर, 2017 आते-आते मेघालय में अफ़स्य़ा 40 प्रतिशत क्षेत्र तक सिमट गया था। अरुणाचल प्रदेश में भी 2017 में यह केवल 16 थानों में ही प्रभावी था।

पिछले अप्रैल को गृह मंत्रालय ने अरुणाचल प्रदेश में पश्चिमी सियांग जिले की लिकाबाली तथा पूर्वी सियांग जिले के रस्किन पुलिस थाने से आंशिक तौर पर अफ़स्य़ा हटा लिया था। अब अफ़स्य़ा नगालैंड, असम, मणिपुर (सात विधानसभाओं को छोड़कर) तथा जम्मू-कश्मीर में प्रभावी है। असम और मणिपुर की सरकारों के पास अब अफ़स्य़ा को जारी रखने या हटाने का अधिकार है।

पूर्वोत्तर हो या जम्मू-कश्मीर-उग्रवादी-आतंकवादी घटनाओं में वृद्धि के कारण जब स्थिति नियंत्रण से बाहर हुई, तो उन्हें अशांत क्षेत्र घोषित कर अफ़स्य़ा लागू किया गया। पर आज पूर्वोत्तर के त्रिपुरा और मिजोरम में उग्रवाद का सफाया हो चुका है, मेघालय एवं अरुणाचल में स्थिति काफी नियंत्रण में है, तो नगालैंड, असम और मणिपुर में सुरक्षा हालात में सुधार हुआ है।

कानून-व्यवस्था की जिम्मेदारी स्थानीय पुलिस की है। यदि लंबे समय तक यह दायित्व सेना एवं अर्धसैनिक बलों को निभाना पड़े, तो यह खतरनाक स्थिति है। अफ़स्य़ा की धारा 4 सुरक्षा बलों को किसी भी परिसर की तलाशी लेने और बिना वारंट किसी को भी गिरफ्तार करने का अधिकार देता है और विवादित इलाकों में सुरक्षा बल किसी भी स्तर तक शक्ति का इस्तेमाल कर सकते हैं। तलाशी या गिरफ्तारी के लिए उन्हें वारंट की जरूरत नहीं होती।

अगर किसी को सेना की कोई कार्रवाई गलत लगती है, तो वह उसके खिलाफ तब तक मुकदमा नहीं कर सकता, जब तक केंद्र इसकी अनुमति न दे। इस कानून से भयावह स्थितियों में उग्रवादियों-आतंकवादियों या ऐसे दूसरे खतरों से जूझ रहे जवानों को कार्रवाई में सहयोग के साथ सुरक्षा भी मिलती है। पर 1990 के बाद जब से यह ज्यादा प्रभावी एवं विस्तारित हुआ है, इसका विरोध भी हुआ है। आरोप लगते हैं कि कानूनी संरक्षण का लाभ उठाकर सेना आम नागरिकों के साथ भी अन्याय करती है। सुरक्षा बलों पर मानवाधिकार के दमन का आरोप लगा है। खैर, पूर्वोत्तर में इसके अंत की शुरुआत हो गई है।

किसी भी स्थिति में अफ़स्य़ा को लंबे समय तक जारी नहीं रखा जाना चाहिए। लोकतांत्रिक व्यवस्था में यह आपात स्थिति का कानून है। इसलिए पूर्वोत्तर में सुरक्षा स्थिति में ठोस सुधार के साथ इसे धीरे-धीरे समाप्त करना लोकतंत्र में स्वाभाविक नागरिक शासन की महत्ता को स्वीकार करना है। इसलिए इसे चरणबद्ध ढंग से खत्म करने का स्वागत किया जाना चाहिए।

## GS World टीम...

### चर्चा में क्यों?

- अफ़स्य़ा छह दशक पुराना कानून है। इसे एक सितंबर 1958 को असम, मणिपुर, त्रिपुरा, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, मिजोरम और नगालैंड में लागू किया गया था। इन राज्यों की सीमाएं चीन, म्यांमार, भूटान और बांग्लादेश से मिलती हैं। अभी हाल ही में केंद्र सरकार द्वारा पूरे मेघालय और अरुणाचल प्रदेश के कुछ क्षेत्रों से सशस्त्र बल विशेषाधिकार कानून (अफ़स्य़ा) हटाने का फैसला बहुत ही सकारात्मक कदम है। 2017 से इन राज्यों में विद्रोह से जुड़ी कोई घटना सामने नहीं आई है।
- तीन साल पहले त्रिपुरा के मुख्यमंत्री मणिक सरकार ने इस आधार पर राज्य से अफ़स्य़ा हटाने की मांग की थी कि वहां विद्रोही गतिविधियां पूरी तरह खत्म हो गई हैं। इसके बाद पूर्वोत्तर के इस राज्य से यह कानून हटा लिया गया था। हालांकि यहां के राज्यों में असम, नगालैंड और मणिपुर के ज्यादातर हिस्से में अफ़स्य़ा कानून फिलहाल लागू रहेगा।
- जम्मू-कश्मीर में भी अफ़स्य़ा 1990 से लागू है। हालांकि हालात को देखते हुए केंद्र ने वहां से इसे हटाने से इनकार कर दिया है।

### अफ़स्य़ा क्या है?

- अफ़स्य़ा यानी आर्म्ड फोर्स स्पेशल पावर एक्ट एक फौजी कानून है, जिसे 'अशांत' क्षेत्रों में लागू किया जाता है। यह कानून सुरक्षाबलों और सेना को कुछ विशेष अधिकार देता है, जो आमतौर पर सिविल कानूनों में वैध नहीं माने जाते। सबसे पहले ब्रिटिश सरकार ने भारत छोड़ो आंदोलन को कुचलने के लिए अफ़स्य़ा को अध्यादेश के जरिए 1942 में पारित किया था।
- भारत में संविधान की बहाली के बाद से ही पूर्वोत्तर राज्यों में बढ़ रहे अलगाववाद, हिंसा और विदेशी आक्रमणों से प्रतिरक्षा के लिए मणिपुर और असम में वर्ष 1958 में अफ़स्य़ा लागू किया गया था। वर्ष 1972 में कुछ संशोधनों के साथ इसे लगभग सारे उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में लागू कर दिया गया। अस्सी और नब्बे के दशकों में पंजाब और कश्मीर में भी राष्ट्रविरोधी तत्वों को नष्ट करने के लिए अफ़स्य़ा के तहत सेना को विशेष अधिकार प्रदान किए गए।

- अफस्पा की वैधता पर समय-समय पर मानवाधिकार संगठन, अलगाववादी और राजनीतिक दल सवाल उठाते रहे हैं। उनका तर्क है कि इस कानून से प्रभावित क्षेत्रों के नागरिकों के कुछ मौलिक अधिकारों का हनन होता है। इस कानून के सेक्शन 3, 4, 6 और सेक्शन 7 पर विवाद रहा है।
- सेक्शन 3 के अंतर्गत केंद्र सरकार को ही किसी क्षेत्र को 'डिस्टर्बड' घोषित करने का अधिकार है। राज्य सरकारों की इसमें कोई खास भूमिका नहीं होती। वहीं सेक्शन 4 आर्मी को बिना वारंट के हिरासत में लेने, किसी भी वाहन की जांच का अधिकार और उग्रवादियों के ठिकानों का पता लगाकर नष्ट करने का अधिकार देता है।
- सशस्त्र बल विशेषाधिकार अधिनियम का सेक्शन 6 फौज को संबंधित व्यक्ति की संपत्ति जब्त करने और गिरफ्तार करने का अधिकार देता है। जबकि सेक्शन 7 के अनुसार इन मामलों में अभियोजन की अनुमति केवल केंद्र सरकार द्वारा स्वीकृति के बाद ही होती है।
- साल 2005 में जीवन रेड्डी कमेटी और वर्मा कमेटी ने अपनी रिपोर्टों में सेना और सुरक्षाबलों पर काफी गंभीर आरोप लगाए थे। इसी आधार पर अफस्पा पर रोक लगाये जाने की मांग की गई थी, जिससे रक्षा मंत्रालय और सेना ने असहमति जताते हुए सिरे से नकार दिया।
- यह एक्ट सुरक्षा बलों को सशक्त करता है। इसी वजह से नगालैंड, पंजाब और कश्मीर में शांति बहाली में काफी सफलता मिली है। माना जाता है कि अधिकतर आरोप अलगाववादियों की शह पर होते हैं और सिर्फ 3% मामलों में ही सेना पर लगाए गए आरोप सही पाए गए हैं।
- जम्मू-कश्मीर के नेशनल कांफ्रेंस, पीडीपी और वाम दलों सहित देश के कई राजनीतिक दलों ने अफस्पा एक्ट में संशोधन की मांग की है। हालांकि इस पर केंद्र सरकारों की स्पष्ट राय रही है कि "आप सेना के हाथ बांधकर सुरक्षा की उम्मीद नहीं कर सकते।"
- जम्मू और कश्मीर से अफस्पा हटाये जाने की मांग को लगभग सभी रक्षा विशेषज्ञ इस तर्क से खारिज करते रहे हैं कि कश्मीर के प्रति पाकिस्तान की नीति में अभी तक कोई बदलाव नहीं आया है। पाकिस्तान अब भी पाक अधिकृत कश्मीर (POK)

क्षेत्र का उपयोग भारत विरोधी गतिविधियों के लिए करता रहा है। वहीं कश्मीर में अलगाववादी बयारों अभी तक थमीं नहीं है। ऐसे में अफस्पा पर रोक लगाना राष्ट्र की संप्रभुता के लिए बड़ा खतरा साबित हो सकता है।

- वर्ष 2000 में इम्फाल में कथित तौर पर असम राइफल्स के जवानों ने 10 लोगों पर गोली चला दी थी। जिसके विरोध में सामाजिक कार्यकर्ता इरोम चानू शर्मीला पिछले 15 सालों से आमरण अनशन कर रही हैं।
- मानवाधिकार समर्थक क्षेत्रीय जनता द्वारा सेना पर लगाए गए मर्डर, रेप और जबरन वसूली के आरोपों को सिविल कानूनों के दायरे में रखने की मांग करते रहे हैं। माना जाता है कि ऐसा कदम घातक होगा, क्योंकि इससे सेना पर झूठे आरोप गढ़े जाएंगे और सेना के मनोबल पर प्रतिकूल असर पड़ेगा।

### बी.पी. जीवन रेड्डी समिति

- 2004 में असम राइफल्स की हिरासत में मणिपुर में थांगजम मनोरमा नाम की एक महिला की हत्या के बाद हुए आंदोलन के मद्देनजर तत्कालीन केंद्र सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश बी.पी. जीवन रेड्डी की अध्यक्षता में एक समिति गठित की थी, जिसने 2005 में दी गई अपनी अनुशंसा में इस कानून को 'दमन का प्रतीक' बताते हुए इसे निरस्त करने की सिफारिश की थी।
- इस घटना के विरोध में इरोम शर्मिला ने अनिश्चितकालीन अनशन शुरू किया था।
- बी.पी. जीवन रेड्डी की अध्यक्षता वाली पांच सदस्यीय समिति ने 6 जून, 2005 को अपनी रिपोर्ट सौंपी थी। 147 पन्नों की रिपोर्ट में सिफारिश की गई थी, 'सशस्त्र बल विशेषाधिकार कानून, 1958 को निरस्त करना चाहिए। चाहे जिस भी कारण से हो, लेकिन यह कानून दमन का प्रतीक बन गया है।
- समिति ने कहा था, 'यह बेहद वांछनीय और उपयुक्त परामर्श देने योग्य है कि कानून को पूरी तरह समाप्त कर दिया जाए, लेकिन इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए उस क्षेत्र (पूर्वोत्तर) की जनता का एक बहुत बड़ा वर्ग चाहता है कि सेना वहां बनी रहे (हालांकि कानून हटा लिया जाना चाहिए)।'

\* \* \*

### संभावित प्रश्न

प्रश्न. हाल ही में केंद्र द्वारा मेघालय से अफस्पा (सशस्त्र बल विशेषाधिकार अधिनियम) का हटाया जाना एक सकारात्मक पहल दृष्टीगत होता है। जिसके कारण वहां नागरिक अधिकार पुनः बहाल होंगे और लोकतांत्रिक ढांचा मजबूत होगा। इस कथन का विश्लेषण कीजिये। (250 शब्द)



# ‘महिलाओं की सैलरी में जेंडर बाधा’

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-2 (सामाजिक न्याय) से संबंधित है।

हाल ही में जारी कॉर्न फेरी जेंडर पे इंडेक्स रिपोर्ट महिलाओं और पुरुषों के औसतन वेतन में अंतर को दिखाती है। इस संदर्भ में हिन्दी समाचार पत्रों ‘मनी भास्कर’ एवं ‘नवभारत टाइम्स’ में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।

## माइंड द गैप (नवभारत टाइम्स)

कॉर्न फेरी जेंडर पे इंडेक्स की ताजा रिपोर्ट बताती है कि महिलाएं पुरुषों के मुकाबले औसतन 16.1 फीसदी कम वेतन पाती हैं। यह इंडेक्स दुनिया के 53 देशों की 14,284 कंपनियों में काम कर रहे 1.23 करोड़ कर्मचारियों के लिंग और वेतन संबंधी आंकड़ों के आधार पर तैयार किया गया है। बहुतों के लिए एकबारगी यकीन करना मुश्किल हो सकता है, लेकिन सच्चाई यह है कि आज भी ऐसी कंपनियां हैं जो एक जैसे काम के लिए भी महिलाओं को पुरुषों के मुकाबले कम वेतन देती हैं।

ऐसे बहुत से तर्क आज भी सुनने को मिल जाते हैं कि लड़कियां तो लड़कियां हैं, वे ज्यादा समय काम नहीं कर पाएंगी, कि उनका आधा ध्यान घर पर लगा होता है कि कुछ ही समय बाद वे मैटर्नटी लीव पर चली जाती हैं वगैरह-वगैरह। कहने की जरूरत नहीं कि ऐसी सारी दलीलें उसी मर्दबादी नजरिये से उपजी हुई हैं जो निरंतर अप्रासंगिक होता जा रहा है। थोड़ी संवेदनशीलता और समझदारी के साथ देखने वाले इस तथ्य की सचाई से इनकार नहीं कर पाते कि महिलाओं की समुचित भागीदारी और उन्हें मिली पर्याप्त अहमियत किसी भी कंपनी के प्रदर्शन में मात्रा ही नहीं, गुणवत्ता के स्तर पर भी जबर्दस्त योगदान करती है।

बहरहाल, उम्मीद की किरणें इस इंडेक्स में भी नजर आती हैं। इसमें इस तथ्य को भी रेखांकित किया गया है कि समान स्तर पर और एक जैसे कार्यों के लिए पुरुष और महिला कर्मचारियों के वेतन में अंतर दुनिया भर में कम हुआ है। जिन 14284 कंपनियों के कर्मचारियों की स्थितियों का अध्ययन इसमें किया गया है, उनमें यह अंतर औसतन 0.5 फीसदी पाया गया। मगर भेदभाव का असर सबसे ज्यादा इस तथ्य में दिखता है कि ज्यादा वेतन वाले पदों पर महिलाओं की नियुक्ति ही पुरुषों के मुकाबले कम होती है। कुछ दिनों पहले आई एक अन्य सर्वे रिपोर्ट के मुताबिक शून्य से दो वर्ष तक के अनुभव वाले पुरुष इतने ही अनुभव वाली महिलाओं के मुकाबले 7.8 फीसदी ज्यादा, छह से दस वर्ष तक के अनुभव वाले पुरुष 15.3 फीसदी ज्यादा और 11 वर्ष या ज्यादा अनुभव वाले पुरुष इतने ही अनुभव वाली महिलाओं के मुकाबले 25 फीसदी ज्यादा कमाते हैं। साफ है कि हमें स्त्री-पुरुष समानता की राह पर अभी लंबा सफर तय करना है।

## भारत में महिलाओं को पुरुषों से 16.1% कम मिलती है

### सैलरी (मनी भास्कर)

भारत में महिलाओं को पुरुषों से 16.1% कम मिलती है सैलरी, दुनियाभर का है यही हाल भारत में महिलाओं की कमाई पुरुषों के मुकाबले 16.1% कम है। कॉर्न फेरी की ओर से जारी रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि यह आंकड़ा ग्लोबल स्तर पर पुरुषों के मुकाबले महिलाओं की औसतन कमाई के बराबर ही है। बता दें कि रिपोर्ट के अनुसार ग्लोबल लेवल पर भी पुरुषों के मुकाबले महिलाओं की औसतन कमाई 16.1% ही कम है।

### 53 देशों में हुए सर्वे पर आधारित है डाटा

कॉर्न फेरी की ओर से जारी की गई जेंडर पे इंडेक्स की इस रिपोर्ट में दुनियाभर के 53 देशों की 14,284 कंपनियों और उनके 1 करोड़ 23 लाख कर्मचारियों को शामिल किया गया।

### कम हो रहा है सैलरी का अंतर

कॉर्न फेरी के रिपोर्ट एंड बेनिफिट सॉल्यु-शन के हेड बॉब वेसलकैंपर ने कहा कि हालांकि अब भी कई कंपनियां हैं जो एक ही जैसी जॉब प्रोफाइल के लिए महिलाओं को कम भुगतान करती हैं। लेकिन अगर औसत की बात करें तो एक ही नौकरी में महिलाओं और पुरुषों की सैलरी का अंतर कम हो गया है।

### क्या कहती है रिपोर्ट

रिपोर्ट के अनुसार पूरी दुनिया में एक ही कंपनी में एक ही स्तर पर काम करने पर सैलरी यह अंतर 1.5 फीसदी कम हो जाता है। जबकि महिलाओं और पुरुषों की सैलरी का अंतर देखते हैं तो एक ही कंपनी, एक जॉब और एक ही तरह के काम के लेवल पर सैलरी का अंतर 0.5% और कम हो जाता है। जबकि भारत अलग-अलग कंपनियों में एक ही जॉब लेवल पर यह अंतर 4 फीसदी का है। वहीं, दूसरी ओर जब एक ही कंपनी और एक ही स्तर की जॉब पर मिलने सैलरी का अंतर देखा गया तो अंतर 0.4 फीसदी कम हो गया। वहीं, जब एक ही कंपनी में एक ही जॉब लेवल पर महिला और पुरुष की सैलरी का अंतर की तुलना की गई तो सैलरी का यह अंतर 0.2 फीसदी और भी कम हो गया।

### भारत से आगे है चीन

महिलाओं को सैलरी देने के मामले में भेदभाव करने में चीन, भारत से अच्छी स्थिति में है। रिपोर्ट के अनुसार चीन में महिला और पुरुषों की सैलरी में 12.1% का अंतर है। इसके अलावा फ्रांस में यह अंतर 14.1% है। जर्मनी में 16.8%, ब्राजील में 26.2%, यूके में 23.8% और अमेरिका में 17.1% अंतर है।

### चर्चा में क्यों?

- देश में महिलाओं को पुरुषों की तुलना में औसतन 16.1 फीसदी कम वेतन मिलता है। इस मामले में वैश्विक औसत भी इतना ही है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि ऊंचे वेतन वाली नौकरियों में महिलाओं की प्रतिभागिता कम है।
- यह बात कॉर्न फेरी की एक रिपोर्ट में कही गई है। कॉर्न फेरी जेंडर पे इंडेक्स के मुताबिक पूरी दुनिया में महिलाएं पुरुषों के मुकाबले औसतन 16.1 फीसदी कम कमाती हैं। पुरुषों और महिलाओं के वेतन का यह फासला हालांकि तब काफी कम रह जाता है, जब विश्लेषण समान स्तर की नौकरी, समान कंपनी और समान जिम्मेदारी के लिए किया जाता है।

### समान स्तर की नौकरी और समान कंपनी के मामले में महिलाओं और पुरुषों के वेतन का अंतर

- वैश्विक औसत : 1.5 फीसदी
- भारतीय औसत : 0.4 फीसदी

### समान स्तर की नौकरी, समान कंपनी और समान जिम्मेदारी के मामले में वेतन का अंतर

- वैश्विक औसत : 0.5 फीसदी
- भारतीय औसत : 0.2 फीसदी
- वैश्विक स्तर पर समान स्तर की नौकरी और समान कंपनी की जब बात की जाती है, तब महिलाओं और पुरुषों के वेतन का फासला घटकर 1.5 फीसदी रह जाता है। वहीं समान स्तर की नौकरी, समान कंपनी और समान जिम्मेदारी के मामले में जब बात की जाती है, तब वैश्विक स्तर पर महिलाओं और पुरुषों के वेतन का फासला और घटकर 0.5 फीसदी रह जाता है।
- भारत में देखा जाए तो जब एक समान स्तर की नौकरी के आधार पर विश्लेषण किया जाता है, तब महिलाओं और पुरुषों के वेतन का अंतर चार फीसदी है। बात जब समान स्तर की नौकरी और समान कंपनी के नजरिए से होती है, तो महिलाओं और पुरुषों के

वेतन का अंतर घटकर 0.4 फीसदी रह जाता है। वहीं बात जब समान स्तर की नौकरी, समान कंपनी और एक समान जिम्मेदारी के नजरिए से विश्लेषण किया जाता है, तो महिलाओं और पुरुषों के वेतन का फासला और घटकर 0.2 फीसदी रह जाता है।

### 53 देशों में हुए सर्वे पर आधारित है डाटा

- इस अध्ययन में रिसर्चरों ने कॉर्न फेरी के वेतन संबंधी आंकड़ों का विश्लेषण करने के बाद कॉर्न फेरी जेंडर पे इंडेक्स का निर्माण किया। यह इंडेक्स 53 देशों की 14,284 कंपनियों में काम कर रहे 1.23 करोड़ से अधिक महिला और पुरुष कर्मचारियों के वेतन का एक विश्लेषण है। कॉर्न फेरी में रिवाइर्स एंड बेनिफिट्स सॉल्यूशंस के प्रमुख बॉब वेसलकैंपर ने कहा कि यद्यपि अनेक कंपनियां हैं, जो महिलाओं को एक समान जिम्मेदारी के बावजूद कम वेतन देती हैं, फिर भी औसतन जब हमने एक समान जिम्मेदारी में महिलाओं और पुरुषों की तुलना की तो पाया कि उनके वेतन का फासला काफी कम हो गया है।

### उच्च वेतन वाली नौकरियों में बढ़ाना होगा महिलाओं का अनुपात

- वेसलकैंपर ने कहा कि वेतन के इस फासले को कम किया जा सकता है और इसके लिए संगठनों को आंतरिक स्तर पर वेतन की असमानताओं को दूर करना होगा और लगातार श्रम बाजार के सर्वोत्तम वेतन वाले हिस्से में महिलाओं का औसत बढ़ाने की कोशिश करनी होगी, जिनमें वरिष्ठतम पद और इंजीनियरिंग तथा अन्य तकनीकी कार्य वाले क्षेत्र शामिल हैं।

### भारत से आगे है चीन

- भारत में महिलाओं और पुरुषों के वेतन का औसत फासला चीन के मुकाबले अधिक है। चीन में यह फासला औसत 12.1 फीसदी है। ब्राजील में यह वेतन फासला 26.2 फीसदी, फ्रांस में 14.1 फीसदी, जर्मनी में 16.8 फीसदी, ब्रिटेन में 23.8 फीसदी और अमेरिका में 17.6 फीसदी है।

### संभावित प्रश्न

प्रश्न. महिलाओं के खिलाफ किसी भी प्रकार के भेदभाव का सामान्य कारण हमारे समाज में प्रचलित पितृसत्तात्मक संरचना है। इस कथन के संदर्भ में पुरुषों और महिलाओं के बीच व्याप्त अंतर का निदान करने हेतु क्या अपेक्षित उपाए किए जाने चाहिए? चर्चा कीजिए। (250 शब्द)

# रिश्तों को नई दिशा देने का प्रयास

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-2 (अंतर्राष्ट्रीय संबंध) से संबंधित है।

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी अनौपचारिक सम्मेलन में भाग लेने के लिए चीन की यात्रा पर थे, जहाँ उन्होंने चीनी राष्ट्रपति से द्विपक्षीय संबंधों पर चर्चा की। इस संदर्भ में हिन्दी समाचार पत्रों 'बिजनेस स्टैंडर्ड', 'नवभारत टाइम्स', 'नई दुनिया', 'राष्ट्रीय सहारा', 'जनसत्ता', 'अमर उजाला' एवं 'दैनिक जागरण' में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।

अप्रत्याशित दौरे से बढ़ी उम्मीद, भारत-चीन के बीच

रिश्तों को मिलेगी एक नई दिशा (नई दुनिया)

एक अप्रत्याशित घटनाक्रम के तहत प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग के साथ दो दिवसीय अनौपचारिक सम्मेलन में भाग लेने के लिए चीन जा रहे हैं। शंघाई सहयोग संगठन यानी एससीओ सम्मेलन में भाग लेने के लिए भी मोदी को जून में चीन जाना है, ऐसे में उससे पहले 27 अप्रैल को उनका वहाँ जाना अप्रत्याशित ही है। चूँकि मोदी विशेष रूप से यह दौरा कर रहे इसलिए यह उम्मीद स्वाभाविक है कि दोनों नेता रिश्तों को एक नई दिशा देंगे और उनकी मुलाकात से कुछ ठोस नतीजे निकलेंगे।

विदेश मंत्री सुषमा स्वराज और उनके चीनी समकक्ष वांग यी ने ऐसे कोई संकेत नहीं दिए कि सम्मेलन में आखिर किन बड़े मुद्दों पर चर्चा की जाएगी? हालांकि वांग ने कहा कि चीन यह जरूर सुनिश्चित करेगा कि अनौपचारिक बैठक पूरी तरह कामयाब रहे और द्विपक्षीय रिश्तों में मील का पत्थर साबित हो। क्या सफलता का अर्थ यह है कि द्विपक्षीय रिश्ते चीनी आक्रामकता से पैदा हुए डोकलाम विवाद से पहले के स्तर पर पहुँच जाएंगे या फिर चीन सहयोग के नए नजरिये के साथ आगे बढ़ने का इच्छुक है और इसमें वह भारत के हितों को पूरी तवज्जो देगा?

यह अच्छा संकेत है कि दोनों देशों ने डोकलाम में पैदा हुए तनाव को कम करने की दिशा में कदम उठाए। हालांकि ऐसी खबरें भी आई कि बाद में चीन ने उस इलाके में निर्माण कार्य शुरू कर दिया तो अपने हितों को देखते हुए भारत को भी वहाँ निगरानी बढ़ानी पड़ी। इस साल फरवरी से ही राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार अजित डोभाल और विदेश सचिव विजय गोखले जैसे शीर्ष अधिकारी चीनी पक्ष के साथ संवेदनशील मुद्दों पर चर्चा कर रहे हैं।

एससीओ में शामिल देशों के विदेश मंत्रियों की उस बैठक के लिए सुषमा स्वराज के बीजिंग दौरे से यह प्रक्रिया आगे बढ़ी जिसमें सम्मेलन के प्रारूप को अंतिम रूप दिया गया। वांग के साथ बैठक में सुषमा स्वराज ने आतंकवाद विरोधी अभियान, जलवायु परिवर्तन, सतत विकास और हेल्थकेयर जैसे मुद्दों पर चर्चा की। इसमें परमाणु आपूर्तिकर्ता समूह यानी एनएसजी का कोई उल्लेख नहीं था।

उम्मीद और संशय (जनसत्ता)

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी इसी हफ्ते चीन के दौरे पर जाएंगे, वह भी किसी बहुपक्षीय सम्मेलन में शिरकत करने नहीं, बल्कि द्विपक्षीय संबंधों पर चीन के राष्ट्रपति शी जिनपिंग से बात करने। विदेश मंत्रालय की इस घोषणा ने थोड़ा चौंकाया, तो बस इसीलिए कि पिछले साल डोकलाम गतिरोध के कारण दोनों देशों के रिश्ते काफी तनावपूर्ण हो गए थे। दौरे का मकसद उस तनाव को दूर करना और आपसी संबंधों को बेहतर या सामान्य बनाना है। मोदी के चीन दौरे का कार्यक्रम विदेशमंत्री सुषमा स्वराज की पिछले दिनों हुई चीन यात्रा के दौरान तय हुआ, जब वे एससीओ यानी शंघाई सहयोग संगठन के विदेशमंत्रियों की बैठक में शिरकत करने वहाँ गई थीं। चीन के विदेशमंत्री वांग यी से उनकी बातचीत में तय हुआ कि सत्ताईस और अट्टाईस अप्रैल को मोदी और शी की अनौपचारिक शिखर वार्ता आयोजित की जाए। यह सूझ नई नहीं है। 1988 में भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी और चीन के तत्कालीन शासन प्रमुख दंग श्याओ पिंग के बीच इसी तर्ज पर शिखर वार्ता हुई थी और इसे दोनों देशों के रिश्तों में नए अध्याय का आरंभ माना गया।

मोदी के संभावित दौरे से उसी तरह आपसी संबंधों में नई जान डालने की उम्मीद की जा रही है। और सच तो यह है कि डोकलाम गतिरोध के बाद चीन से संबंध सुधारने की कवायद महीनों पहले शुरू हो गई थी। पिछले साल दिसंबर में चीन के विदेशमंत्री वांग यी दिल्ली आए। इसके बाद हमारे राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार अजित डोभाल और उनके चीनी समकक्ष वांग जिएची मिले-बैठे। इस साल के शुरू में विदेश सचिव विजय गोखले भी बिजिंग गए थे। दोनों देशों के बीच ग्यारहवें संयुक्त आर्थिक समूह की बैठक हो चुकी है। हाल ही में उनके बीच रणनीतिक-आर्थिक वार्ता भी हुई। दोनों देशों के विदेश मंत्रालयों के आला अधिकारियों की बैठकें भी हुईं। इस सब से डोकलाम विवाद से पैदा हुई खटास से उबरने की कोशिशें जारी हैं। क्या चीन भी ऐसा चाहता है? कम से कम दो संकेत ऐसे जरूर हैं। चीन ने सिक्किम में नाथू ला मार्ग से कैलाश मानसरोवर यात्रा फिर से शुरू करने पर सहमति जता दी है। करीब दस माह पहले डोकलाम गतिरोध के बाद यात्रा रोक दी गई थी। भारतीय विदेश मंत्रालय हर साल दो अलग-अलग मार्गों से जून से सितंबर तक यात्रा का आयोजन करता रहा है। इन दो मार्गों में लिपुलेख दर्रा (उत्तराखंड) और नाथू ला दर्रा (सिक्किम) हैं।

पिछले कुछ महीनों में भारत ने भी दलाई लामा को लेकर चीन की आपत्तियों को खासी तवज्जो दी है। तिब्बतियों द्वारा आयोजित कार्यक्रमों से सरकार और उसके अधिकारियों ने दूरी बनाए रखी। मोदी-चिनफिंग सम्मेलन ऐसे दौर में हो रहा है जब अंतरराष्ट्रीय संबंध भारी बदलाव के दौर से गुजर रहे हैं। अमेरिका की तरह महाशक्ति बनने की अपनी आकांक्षा को पूरा करने के लिए चीन हरसंभव कोशिश में लगा है। उसने अपना बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव यानी बीआरआई का प्रारूप ऐसा बनाया है कि उसे अपने साथ कुछ पिछलग्गू देश मिल जाएं।

चीन को लेकर अपने तमाम विरोधाभासी बयानों से अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रंप भ्रम ही पैदा करते हैं, लेकिन इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि चीन की चुनौती का तोड़ निकालने के लिए अमेरिका कुछ कदम जरूर उठा रहा है। चीनी वस्तुओं पर आयात शुल्क बढ़ाना इसी दिशा में उठाया गया कदम है। चीन की काट के लिए अमेरिका भारत जैसे देशों के साथ सामरिक रिश्तों को मजबूत बना रहा है। स्वाभाविक रूप से चीन नहीं चाहेगा कि भारत पूरी तरह अमेरिका के पाले में चला जाए।

बीते कुछ समय से दुनिया भर में भारत को एक उभरती हुई शक्ति के तौर पर स्वीकृति मिलती जा रही है। मोदी के हालिया स्टॉकहोम दौरे के दौरान स्वीडन के प्रधानमंत्री ने कहा, 'भारत एक वैश्विक दिग्गज के रूप में उभरा है। चाहे जलवायु परिवर्तन का मुद्दा हो या सतत विकास, कोई भी प्रमुख वैश्विक विमर्श भारत की राय के बिना पूरा नहीं होता।' चीन भी भारत के अंतरराष्ट्रीय कद की अनदेखी नहीं कर सकता जो डोकलाम विवाद के दौरान मोदी के दृढ़ एवं संयत रुख के चलते और बढ़ा ही है।

ध्यान रहे कि इस दौरान चीन की टीका-टिप्पणियां और रुख उकसाने वाला ही था। सुषमा स्वराज और वांग यी ने बैठक के बाद कहा कि मोदी और चिनफिंग उन दीर्घावधिक और रणनीतिक मसलों पर चर्चा करेंगे जिनका वास्ता भविष्य के संबंधों से होगा। भारत-चीन संबंधों के साथ ही यह समूचे क्षेत्र के लिए भी सकारात्मक ही कहा जाएगा। इस दौरान मोदी को भी अवसर मिलेगा कि वह चीन के साथ बेहतर संबंधों की दिशा में भारत की आवाज बुलंद करें। यह क्षेत्रीय और वैश्विक हित में होगा। इसके साथ ही चीन को भी यह मंशा जाहिर करनी होगी कि वह सीमा विवाद को सुलझाने के प्रति गंभीर है। उसे भारत के साथ बराबरी का आर्थिक एवं वाणिज्यिक रिश्ता बनाना होगा। जाहिर है कि इसके लिए उसे अपने बढ़-चढ़कर किए जाने वाले उन दावों से पीछे हटना पड़ेगा जिनकी ऐतिहासिक पुष्टि नहीं होती।

भारत-चीन रिश्तों में तमाम बाधाएं इसलिए हैं, क्योंकि चीन आतंकवाद और अन्य मुद्दों पर पाकिस्तान की ढाल बना हुआ है। इसमें एनएसजी सदस्यता का मुद्दा भी शामिल है। बीते दिनों लंदन में भारतवंशियों के साथ बातचीत में मोदी ने पाकिस्तान को आतंक का निर्यातक करार दिया तो इस पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए चीन ने आतंक के खिलाफ मुहिम छेड़ने में पाकिस्तान का बचाव किया। अभी तक चीन ने यह भी संकेत नहीं दिए हैं कि वह मसूद अजहर

इस यात्रा का धार्मिक ही नहीं, सांस्कृतिक महत्त्व भी है। दूसरा सकारात्मक संकेत यह है कि चीन ने ब्रह्मपुत्र और सतलुज नदी में जल प्रवाह से संबंधित आंकड़े भारत के साथ फिर से साझा करने पर सहमति जताई है। डोकलाम की तनातनी के बाद से चीन ने ये आंकड़े मुहैया कराना बंद कर दिया था। ये आंकड़े बाद से निपटने की योजना बनाने में उपयोगी हो सकते हैं। इन संकेतों से जहां उम्मीद होती है वहीं कुछ संशय भी हैं। क्या विवादित मसलों पर चीन के रुख में तब्दीली आ जाएगी? क्या चीन हमारे राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री या सरकार के अन्य प्रतिनिधियों के अरुणाचल दौरों पर विरोध जताना बंद कर देगा? क्या बीआरआई यानी बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव से जुड़े भारत के एतराज को वह संजीदगी से लेगा? क्या दक्षिण चीन सागर को लेकर उसका रवैया बदल जाएगा? क्या व्यापारिक असंतुलन और बाजार पहुंच में अवरोध की भारत की शिकायतों का निपटारा होगा? इन सवालों के जवाब ही बताएंगे कि प्रस्तावित अनौपचारिक शिखर वार्ता से क्या हासिल हुआ।

\* \* \*

को अंतरराष्ट्रीय आतंकी घोषित करने वाले संयुक्त राष्ट्र के प्रस्ताव का समर्थन करेगा या नहीं? अगर अब वह इस प्रस्ताव का समर्थन करता भी है तो भारत को इसे बहुत बड़ी मेहरबानी के तौर पर नहीं देखना चाहिए।

चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारे यानी सीपीईसी से जुड़े अपने आर्थिक एवं सामरिक हितों को देखते हुए चीन पाकिस्तान के साथ सभी मोर्चों पर रिश्ते मजबूत बना रहा है। चीन-पाकिस्तान के रिश्तों की बुनियाद अभी तक भारत के प्रति साझा नकारात्मकता पर टिकी हुई थी, लेकिन सीपीईसी ने इन रिश्तों को एक नया आधार दिया है। चीन को डर है कि भारत पाकिस्तान विरोधी बलूच समूहों और अन्य तत्वों को शह देकर उसका खेल बिगाड़ सकता है।

रणनीतिक रूप से भारत ऐसा कर तो सकता है, लेकिन उसने चीनी हितों के खिलाफ कभी ऐसा कोई कदम नहीं उठाया है। ऐसे में यह देखना दिलचस्प होगा कि सम्मेलन के दौरान सीपीईसी के मोर्चे पर कोई नई बात सामने आती है या नहीं? अगर मोदी चिनफिंग की सोच में बदलाव ला सकते हैं और यह बदलाव उनकी नीतियों में भी दिखता है तो यह इस सम्मेलन की बहुत बड़ी सफलता होगी।

इसी तरह अगर चुनावी साल के पहले सीमा पर शांति को लेकर सहमति बनती है तो इसे भी सराहनीय कहा जाएगा। इस सबके बीच भारत को अपने रक्षा मोर्चे को और मजबूत बनाना होगा और साथ ही जापान एवं अन्य एशियाई देशों के साथ रिश्ते प्रगाढ़ करने होंगे। उसे अपने उन पड़ोसी देशों में भी अपनी पैठ बनानी होगी।

जहां चीन उसे घेरने के लिए घुसपैठ कर रहा है। मालदीव इसका ज्वलंत उदाहरण है तो श्रीलंका में भी चीनी निवेश भारतीय सुरक्षा के लिए चुनौती खड़ी कर रहा है। इसी तरह नेपाल भी भारत के लिए बहुत महत्वपूर्ण है और वहां भी चीन का तोड़ निकालना होगा। इस सम्मेलन की मंशा स्वागतयोग्य है, लेकिन भारत किसी मोर्चे पर ढील नहीं दे सकता।



## चीन में भारतीय वसंत ( अमर उजाला )

याद नहीं कि पिछले सत्तर वर्षों में कभी ऐसा हुआ हो कि एक पखवाड़े में भारत के राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार, रक्षा मंत्री, विदेश मंत्री और फिर प्रधानमंत्री चीन यात्रा पर रहे हों। दोकलम में 73 दिवसीय तनावपूर्ण गतिरोध के एक साल बाद यह परिदृश्य क्या अचानक चीन में भारतीय वसंत का अहसास दिलाता नहीं लगता?

पर चीन कठिन है और विशेषकर शी जिनपिंग के आजीवन सम्राट समान शासक बने रहने के पार्टी निर्णय के बाद उसकी भावी कूटनीति का आकलन प्रभाव-वृद्धि की असीम महत्वाकांक्षा के रूप में ही किया जा सकता है। वह एशिया, यूरोप व अफ्रीका में निर्बाध प्रभुत्व की ओर बढ़ना चाहता है, लेकिन उसे इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अमेरिका से बढ़ कर भारत से चुनौती दिखती है।

शंघाई सहयोग संगठन (एससीओ) के शिखर सम्मेलन के माध्यम से भारत से उच्च स्तरीय वार्ताएं न केवल भारत की बढ़ती शक्ति और राजनयिक दृढ़ता को मान्यता है, बल्कि दोनों देशों में इस परिपक्व भाव का भी द्योतक है कि 'चलना' तो साथ-साथ है- या तो झगड़ते हुए चलो या सहयोग से बढ़ो।

आठ सदस्य देशों वाला सहयोग संगठन मूलतः चीन, कजाकिस्तान, किर्गिस्तान, रूस, तजाकिस्तान और उज्बेकिस्तान ने मिलकर बनाया था, सुरक्षा, सैन्य सहयोग और आतंकवाद विरोधी संयुक्त चिंताओं को एजेंडे में रखकर। गत वर्ष भारत और पाकिस्तान (चीन के समर्थन से भारत की स्थिति अपने लिए संतुलित करने) सदस्य बने और प्रधानमंत्री मोदी ने अस्ताना में बयान दिया कि भारत-चीन संबंधों में मतभेद-विवाद में न बदलते हुए, ठीक से संभालें जाएं, तो अवसरों में बदल सकते हैं।

इस बीच, दलाई लामा तथा उनके कार्यक्रमों को लेकर कुछ परिवर्तन हुए, जो प्रकटतया भारत-चीन संबंधों को आहत होने से रोकने के लिए ही प्रतीत हुए। यद्यपि इससे परंपरागत दृष्टि से दलाई लामा के समर्थकों को विस्मय हुआ।

अनेक सांस्कृतिक अकादमिक प्रतिनिधि मंडल चीन गए और 13 अप्रैल को भारत के राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार अजित डोभाल ने प्रधानमंत्री की 27 अप्रैल को होने वाली चीन यात्रा की तैयारी के लिए चीन के प्रमुख राजनयिक यांग जेयची से भेंट की, जो सीमा वार्ता के लिए अधिकृत प्रतिनिधि वांग यी से कहीं अधिक वरिष्ठ हैं। चीन में यही पद्धति है किसी वार्ता को बेहतर एवं सामान्य से अधिक महत्व देने की।

विदेश मंत्री सुषमा स्वराज और रक्षा मंत्री निर्मला सीतारमण शंघाई सहयोग संगठन के पृथक-पृथक संपन्न विदेश व रक्षा मंत्रियों के सम्मेलनों में आईं और संगठन के सभी पुरुष मंत्री-सदस्यों में वे दोनों अकेली महिलाएं थीं। यही तथ्य बढ़ते भारत और महिला नेतृत्व के उभार को दुनिया में दर्शा गया। जहां भारत के सिवाय अन्य सदस्य देशों ने चीन के वन बेल्ट, वन रोड' प्रस्ताव का समर्थन किया, वहीं तेज तर्रार दोनों मंत्रियों ने आतंकवाद के विरोध में भारत का रुख

## नए सिरे से रिश्ते ( बिजनेस स्टैंडर्ड )

चीन के वुहान शहर में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और चीन के राष्ट्रपति शी चिनफिंग के बीच शिखर बैठक होने वाली है। गत वर्ष सिक्किम की सीमा के निकट डोकलाम में दोनों देशों की सेनाओं के बीच तनाव के बाद यह ऐसी पहली बैठक है। वुहान शिखर बैठक को दोनों देशों के बीच द्विपक्षीय रिश्तों के पुनर्स्थापन के अवसर के रूप में देखा जा रहा है। बीते वर्षों में हमारे आपसी रिश्ते तेजी से कमजोर हुए और डोकलाम इसका कटुतम चरण था। इस पुनर्स्थापन के पहले संकेत तब मिले थे जब गत वर्ष दिसंबर में देश के राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार अजित डोभाल ने विशेष भारतीय प्रतिनिधि के रूप में चीन के राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार यांग जिंकेई से मुलाकात की। इसके बाद फरवरी में भारतीय विदेश सचिव विजय गोखले ने चीन की यात्रा की। कहा गया कि इस यात्रा को समय पूर्व आयोजित किया गया ताकि सरकारी अधिकारियों को यह चेतावनी दी जा सके कि वे दलाई लामा को भारत में शरण लेने की 60वीं वर्षगांठ के कार्यक्रमों से दूर रहें। तब से अब तक कई वरिष्ठ भारतीय मंत्री चीन की यात्रा पर जा चुके हैं।

आखिर रिश्तों की नए सिरे से स्थापना के पीछे क्या वजह है? क्या इसके पीछे कोई सामरिक नीति या विचार है? इसके पीछे दो वजह हो सकती हैं। पहली, भारत सरकार की यह इच्छा कि वह सीमा पर किसी तरह की दिक्कत में न पड़े या निकट आ रहे आम चुनाव को देखते हुए चीन के साथ किसी तरह का आमना-सामना नहीं हो। ऐसी घटनाएं अतीत में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में अतिशय राष्ट्रवाद की उद्वेलक बनाकर प्रस्तुत की जाती थीं। अब चुनावी साल में सरकार को ऐसी किसी घटना पर वह प्रतिक्रिया देनी पड़ सकती है जिसे अन्यथा समझदारी नहीं माना जाएगा। अगर ऐसा नहीं किया गया तो उसकी राष्ट्रवादी छवि को कुछ नुकसान पहुंच सकता है।

दूसरी प्रेरणा यह हो सकती है कि भारत ने चीन के समक्ष अपनी क्षमताओं का तार्किक आकलन किया हो। भारत की सैन्य शक्ति कमजोर है, वह जरूरी हथियार और प्लेटफॉर्म खरीदने या उनके उन्नयन में नाकाम रहा है और लंबे समय तक बिना किसी सुसंगत सैन्य नीति के उसका परिचालन हुआ। डोकलाम में उसे पहाड़ी इलाके का फायदा मिला। अन्य जगहों पर दोनों देशों की क्षमताओं का अंतर स्पष्ट नजर आया। भारत मालदीव की घटनाओं को अपने पक्ष में प्रभावित करने में नाकाम रहा। यह भी इसका एक उदाहरण है। इस बीच भारत को यह भी लगा है कि पाकिस्तान के राज्य समर्थित आतंकवाद को लेकर चीन का धैर्य अनंत काल तक अनुकूल नहीं बना रह सकता। ऐसा भी नहीं लगता कि भारत को नियंत्रित रखना या उसकी आकांक्षाओं को सीमित रखना चीन की रणनीति का मुख्य हिस्सा हो। एक बेल्ट, एक मार्ग पहल मोटे तौर पर आंतरिक आर्थिक और राजनीतिक वजहों से प्रेरित है। इस ढांचे के तहत दक्षिण एशिया और हिंद महासागर क्षेत्र में चीन की बढ़ती छाप भी शायद भारत की केंद्रीय चिंता न हो। इसलिए भारत ने कूटनीतिक स्तर पर गुंजाइश छोड़ रखी है। ऐसे में कई लोग कह सकते हैं कि चीन के साथ मैत्री की नई शुरुआत भारत के हित में है।

इसके व्यापक और दीर्घकालिक प्रभाव क्या होंगे यह देखना होगा। दशकों तक पश्चिमी देश और भारत यह मानते रहे हैं कि

दृढ़ता से रखा।

सीमा पार का आतंकवाद, साइबर सुरक्षा और मादक द्रव्यों की तस्करी रोकने के लिए सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता है। दोनों ने ही भारत की बढ़ती ताकत का जिज्ञास कर आतंकवाद को मूलभूत मानवाधिकार हनन की चुनौती बताया।

कुल मिलाकर भारत के तीनों वरिष्ठ प्रतिनिधियों ने चीन में नरेंद्र मोदी की शी जिनपिंग की अनौपचारिक वार्ता के लिए वातावरण तथा आधारभूमि बना दी। मोदी इस अवसर का भारत की चिंताओं और विकास के लिए उपयोग करेंगे ही।

पहली चिंता है, सीमा पर विवादों का समाधान। भारत यह स्पष्ट कर चुका है कि चीन के साथ भविष्य में सामान्य से बेहतर संबंध बनाने के लिए सीमा पर शांति पहली आवश्यकता है। दोकलम विवाद के दौरान नरेंद्र मोदी की दृढ़ता और सेना की निर्भीक तैयारी ने विश्व में भारत की साख बढ़ाई, पर ऐसा विवाद दोबारा न हो।

भारत के साथ व्यापार असंतुलन दूर हो। ये बातें जरूरी हैं, क्योंकि एशिया एवं पश्चिम एशिया में भारत को अपने नेतृत्व की धुरी मजबूत जमानी है। उत्तर कोरिया का प्रश्न चीन तथा अमेरिका में शक्ति स्पर्द्धा का विषय बना है। भारत इसे देख रहा है। मालदीव, श्रीलंका से लेकर बांग्लादेश, म्यांमार व आसियान में चीन सीधे-सीधे भारत के बढ़ते प्रभाव को रोकने का प्रयास कर रहा है।

चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारे के सामने उत्तर-दक्षिण परिवहन गलियारा (मुंबई-बंदर अब्बास, तेहरान, चाबहार, बाकू-अजरबैजान, अस्त्राखान, मास्को, सेंट पीटर्स बर्ग- 7200 किलोमीटर) भारत का बहुत बड़ा सामरिक अस्त्र है। गत 13 अप्रैल को चीन में सामरिक आर्थिक सम्मेलन में चीनी विदेश मंत्री ने भारत-नेपाल-चीन आर्थिक गलियारे का विषय छेड़कर संकेत दिया था कि चीन किसी भी तरह भारत को वन बेल्ट, वन रोड के लिए सहमत करना चाहता है।

पर भारत के लिए तीन प्राथमिकताएं हैं, पहली, सीमा पर शांति और सुरक्षा; दूसरी, पाकिस्तान द्वारा आतंकवाद बढ़ाने पर रोकने के लिए विश्व जनमत उभारना तथा चीन-पाकिस्तान नजदीकी को विश्व शांति के लिए खतरा सिद्ध करना; तीसरा, विश्व नेतृत्व में ट्रंप-शी जिनपिंग के अखाड़े को भारत के नवीन शक्ति केंद्र के सापेक्ष ला बिठाना।

पर चार हजार किलोमीटर की सीमा, परमाणु शक्ति और आने वाले समय में एशिया में अपना प्रभाव स्थापित करने की सामरिक प्रतिस्पर्द्धा भारत-चीन के अघोषित एजेंडा में है। हिंद महासागर क्षेत्र इस दृष्टि से एक चुनौती का क्षेत्र बना है, जहां चीन की उपस्थिति लगातार बढ़ी है।

बुहान (चीन) में मोदी-शी प्रस्तावित वार्ता विवादों को अवसर में बदल सामरिक मुद्दों को वार्ता के जरिये हल करते हुए एशिया के नए नेतृत्व को हासिल करने की दिशा में बढ़ा कदम है। मोदी इस अवसर को भारत के रणनीतिक लाभ में बदलेंगे और गत वर्ष चीन से बढ़ते विवाद देख प्रसन्न हो रहे भारत-शत्रुओं को निराश करेंगे, यह निश्चित है।

मजबूत, समृद्ध और लोकतांत्रिक भारत चीन के साथ शक्ति संतुलन का माध्यम बनेगा। भारत ने इस धारणा का पूरा लाभ लेने की कोशिश की है। यह उसके लिए अन्य देशों से सहायता लेने का आधार बना है वह भी बिना अपनी सामरिक स्वायत्तता के साझा समझौता किए। अब यह धारणा उस कदर तथ्यात्मक नहीं नजर आती। भारत के लिए इसके निहितार्थ स्पष्ट हैं।

## प्रौढ़ राजनय का नमूना ( नवभारत टाइम्स )

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की चीन यात्रा पर पूरी दुनिया की नजर है। दोनों देशों के राष्ट्राध्यक्षों ने अनौपचारिक रूप से मिलने का फैसला कर तमाम कूटनीतिक विशेषज्ञों को चौंका दिया है। डोकलाम प्रकरण को ठंडा पड़े अभी ज्यादा दिन नहीं हुए हैं। भारत, चीन और भूटान की इस सीमावर्ती जगह पर करीब 70 दिनों तक चला टकराव पिछले साल अगस्त में खत्म हुआ था। इसके बाद दोनों देशों में कोई विवाद तो नहीं हुआ लेकिन एक तनाव सा बना ही रह गया। दोनों ने ही ऐसा कोई संकेत नहीं दिया कि संबंध सुधारने के लिए उसकी तरफ से कोई अतिरिक्त प्रयास किया जा रहा है। लेकिन अब मोदी और शी जिनपिंग की 27-28 अप्रैल को होने वाली अनौपचारिक मुलाकात से जाहिर हो गया है कि दोनों ने रिश्तों को दोबारा पटरी पर लाने का फैसला किया है।

यह दोनों देशों की परिपक्व डिप्लोमेसी का सूचक है। दोनों ने वक्त की नजाकत भांप ली है और उसके मुताबिक चलने का निर्णय किया है। इस मुलाकात से न सिर्फ द्विपक्षीय संबंधों की दिशा बदल सकती है बल्कि वैश्विक समीकरण में भी बदलाव आ सकता है। अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप के संरक्षणवादी रवैये के बाद विश्व व्यापार का परिदृश्य बदल गया है। क्षेत्रीय कारोबारी समीकरणों का महत्व बढ़ने वाला है। चीन ने पहले ही इसका अंदाजा लगाकर अपनी निर्यात आधारित अर्थव्यवस्था को उपभोग आधारित बनाने की ओर कदम बढ़ा दिए हैं। अभी अमेरिका से उसका व्यापार युद्ध शुरू हो जाने के बाद भारत के विशाल बाजार की उसे बहुत ज्यादा जरूरत है। फिर, चीन अपने व्यापारिक तंत्र को मध्य एशिया तक बढ़ाना चाहता है। इसके लिए भी भारत का सहयोग अहम है।

दूसरी तरफ अमेरिकी संरक्षणवादी नीति भारतीय अर्थतंत्र के लिए भी नुकसानदेह साबित हो रही है। अमेरिका की सख्त वीजा पॉलिसी ने भारतीय प्रोफेशनल्स के लिए वहां जाना और काम करना कठिन बना दिया है। भारतीय पेशेवरों को भी चीन जैसे नए इलाकों की ओर ध्यान देना होगा। ऐसे में चीन के साथ आपसी सहयोग बढ़ाना हमारे लिए भी फायदे का सौदा साबित होगा। 1988 में भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी और चीन के तत्कालीन विचार प्रमुख तंग श्याओफिंग के बीच इसी तरह अनौपचारिक वार्ता हुई थी, तब तंग ने राजीव गांधी से कहा था कि हम सीमा विवाद को छोड़कर व्यापार पर ध्यान केंद्रित करें। इस तरह दोनों देशों के रिश्तों में एक नए अध्याय की शुरुआत हुई थी। संभव है, शी जिनपिंग उसी प्रक्रिया को आगे बढ़ाना चाहते हों। उन्हें भी अहसास होगा कि दोनों मुल्कों के बीच आधी सदी से चले आ रहे विवाद रातों-रात नहीं सुलझने वाले। वे समय के साथ सुलझेंगे, लेकिन अभी ज्यादा जरूरत कारोबारी सहयोग बढ़ाने की है, ताकि एशिया के दोनों ताकतवर देश शांति और समृद्धि की ओर बढ़ सकें।

## वुहान ने जगाई एक उम्मीद ( दैनिक जागरण )

वुहान में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग के बीच अनौपचारिक शिखर वार्ता में किसी समझौते की घोषणा न होने के बावजूद उसकी अहमियत इसलिए बढ़ जाती है, क्योंकि दोनों देशों ने सीमा पर शांति बनाए रखने के लिए संचार तंत्र को मजबूत करने और आपसी समझ विकसित करने के लिए अपनी-अपनी सेनाओं को रणनीतिक मार्गदर्शन जारी करने का फैसला किया। इसके अलावा चीन ने संकेत दिए कि वह अपनी महत्वाकांक्षी परियोजना वन बेल्ट-वन रोड में भारत की भागीदारी पर जोर नहीं देगा। यह इसलिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर से गुजरने वाला चीन निर्मित आर्थिक गलियारा इसी परियोजना का हिस्सा है।

यह भी खासा उल्लेखनीय है कि दोनों देशों में अफगास्तान में मिलकर काम करने की समझबूझ बनी। बीते वर्ष डोकलाम में 73 दिनों के गतिरोध के बाद दोनों देशों के बीच इस तरह आपसी समझ कायम होना एक कूटनीतिक कामयाबी है। इस कामयाबी तक इसीलिए पहुंचा जा सका, क्योंकि डोकलाम विवाद के बाद दोनों देशों ने अपने-अपने स्तर पर संबंध सुधारने की पहल की और आखिरकार भारतीय प्रधानमंत्री जून में चीन के अपने प्रस्तावित दौरे के पहले ही चीनी राष्ट्रपति से मिलने वुहान गए। ऐसे अनौपचारिक शिखर सम्मेलन दुर्लभ ही होते हैं। चीन भारत का सबसे बड़ा पड़ोसी देश ही नहीं, एशिया की एक ऐसी बड़ी ताकत है जो दुनिया में अपनी छाप छोड़ने को तत्पर है, लेकिन वह इसकी भी अनदेखी नहीं कर सकता कि भारत भी एक उभरती हुई ताकत और सबसे तेज गति से बढ़ती अर्थव्यवस्था है।

भारत और चीन के बीच सीमा विवाद एक पेचीदा मसला बना हुआ है। डोकलाम में टकराव इसी सीमा विवाद की उपज था। हालांकि 1962 के युद्ध के बाद चीन सीमाओं पर शांति बनाए हुए है, लेकिन उसकी आक्रामकता किसी से छिपी नहीं। भारत ने तिब्बत को चीन के स्वायत्तशासी क्षेत्र के रूप में मान्यता देकर यह समझा था कि इससे चीन अपने विस्तारवादी रवैये का परित्याग करेगा, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। पिछले साल डोकलाम में भूटान के इलाके में सड़क निर्माण की चीन की कोशिश उसके विस्तारवादी रवैये के साथ ही इसका भी सूचक थी कि वह भारत की सुरक्षा के लिए खतरा बन सकता है। इस खतरे को भांपकर ही भारत ने डोकलाम में अपनी सेनाएं भेजीं और चीन की तमाम धमकियों के बाद भी अपने कदम पीछे खींचने से इन्कार किया। भारत की दृढ़ता के आगे चीन को पीछे लौटना पड़ा।

जब यह आशंका थी कि चीन फिर से डोकलाम अथवा अरुणाचल या लद्दाख में अतिक्रमण की कोशिश कर सकता है तब उसने अपना रुख नरम किया। इसके जवाब में भारत ने भी दलाई लामा को लेकर उसकी चिंताओं को समझा। इसके बाद दोनों देशों ने संबंध सुधार की जो कोशिश की उसका ही नतीजा वुहान में अनौपचारिक बैठक के रूप में देखने को मिला। वुहान में दोनों देशों के नेताओं ने भारत-चीन के प्राचीन संबंधों का स्मरण किया। चूंकि चीन में प्रचलित बौद्ध धर्म भारत की ही देन है इसलिए दोनों देशों के बीच एक आध्यात्मिक रिश्ता भी है। इस रिश्ते के बाद भी दोनों देशों के संबंधों में वैसी मधुरता नहीं जैसी होनी चाहिए। इसका मूल कारण पुराने समझौतों को नकारने की चीन की आदत है। वह अन्य किसी से अपने लिए जैसे आचरण की अपेक्षा करता है वैसा दूसरों के प्रति प्रदर्शित करने से इन्कार करता है।

## माकूल समय की चुनौतियां ( राष्ट्रीय सहारा )

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की चीन यात्रा इस कारण बेहद महत्वपूर्ण समझी जा रही है कि इस समय भारत-चीन संबंधों में तनाव का दौर चल रहा है। पिछले कई महीनों से यह संभावना एक बार फिर प्रकट हो रही है कि एक नई शुरुआत इस अनौपचारिक शिखर वार्ता से हो सकती है। यों तो अंतरराष्ट्रीय राजनीति में कुछ भी अनौपचारिक नहीं होता। जिसे अनौपचारिक कहा जाता है उसकी तैयारी विधिवत की जाती है, भले ही इसे जगजाहिर नहीं किया जाता। इस बार भी मोदी के चीन जाने के पहले भारतीय विदेश मंत्री चीनी विदेश मंत्री से भेंट कर चुके हैं, और भारत के राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार अजित डोभाल अपने समकक्ष से बातचीत कर हाल में भारत लौटे हैं। इन दोनों ने मोदी की चीन यात्रा की जमीन तैयार की है, इसमें कोई संदेह नहीं। सात-आठ महीने तक लगातार जारी डोकलाम संकट ने यह बात साफ कर दी थी कि चीन के तेवर शी के नेतृत्व में नरम नहीं जुझारू ही रहने वाले हैं। चीन के विदेश मंत्रालय के अधिकारी बारम्बार घोषणा करते रहे थे कि चीन अपनी एक इंच जमीन पर भी किसी देश को कब्जा नहीं करने देगा। जो चीन से टकराएगा उसे सबक सिखलाया जाएगा। इन चेतावनियों और धमकियों के जवाब में भारत के सेनाध्यक्ष और कुछ अन्य अधिकारियों ने मुंहतोड़ जवाब देने में देरी नहीं की। घोषणा करते हुए कि आज का हिन्दुस्तान 1962 का भारत नहीं और चीन ने कोई दुस्साहस किया तो उसे इसका खमियाजा भुगतना पड़ सकता है। जब चीन ने डोकलाम से पीछे हटने का फैसला किया तो भारत में कई देश प्रेमियों ने इसे अपनी जीत समझा। उस वक्त भी आलोचकों का कहना था कि चीन को भारत सरकार ने निश्चय ही परदे के पीछे कुछ आश्वासन दिया है, तभी चीन तनाव घटाने के लिए तैयार हुआ है। इस मत को निराधार भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसी समय भारत सरकार के काबिना सचिव ने केंद्रीय मंत्रियों और वरिष्ठ सरकारी अवसरों को एक पत्र में यह सलाह दी कि दलाईलामा के भारत में शरण लेने की 60वीं जयंती के अवसर पर आयोजित जलसों में वह भाग न लें। कई स्वाभिमानी भारतीयों को यह लिखित सलाह कम आदेश ज्यादा खटका था क्योंकि अब तक भारत दलाई लामा को आदरणीय मेहमान बतलाता रहा था। बारम्बार यह भी रेखांकित करता था कि भारत में रहने वाले तिब्बतियों को शांतिपूर्ण ढंग से तिब्बत में मानवाधिकारों के हनन के बारे में अपनी असहमति और आक्रोश प्रकट करने की पूरी स्वतंत्रता भारतीय जनतंत्र में है। इस मामले में चीन की संवेदनशीलता के प्रति अचानक सजग होना निश्चित ही नीति में बदलाव का लक्षण समझा जा सकता है। जब 2014 में शी ने भारत की यात्रा की थी तब मोदी ने उनके स्वागत-सत्कार में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। लगा कि इसका लाभ भारत को अपना राष्ट्रीय हित साधने करने में निश्चित ही लाभ होगा पर बहुत शीघ्र यह आशा निर्मूल साबित हो गई। चीन ने पाकिस्तान में रह रहे और अन्तरराष्ट्रीय आतंकवादी करार किए जा चुके हाफिज सईद को बचाने के लिए अपनी राजनयिक ढाल का लगातार प्रयोग जारी रखा है। भारत की परमाणु ईंधन सप्लाई ग्रुप की सदस्यता को भी अधर में रखा। पाकिस्तान का बेहिचक समर्थन करने में चीन ने कोई कसर नहीं छोड़ी। जिस वन बेल्ट वन रोड और चाइना-पाकिस्तान इकॉनॉमिक कोरिडोर को चीन आने वाले वर्षों में अपने और पूरे एशिया के लिए महत्वपूर्ण समझता है, उसे लेकर भी भारत के मन



शी जिनपिंग के आजीवन राष्ट्रपति के तौर पर स्थापित होने के बाद यह माना गया था कि चीन के विस्तारवादी रुख में और आक्रामकता देखने को मिलेगी और इसके चलते सीमा विवाद सुलझाने में कहीं मुश्किल हो सकती है। इसमें दोराय नहीं कि वुहान में दोनों देशों के बीच विभिन्न मसलों पर बनी सहमति ने सीमा विवाद पर टकराव की आशंका को कम तो किया है, लेकिन अभी उसे पूरी तौर पर दूर करना शेष है। बावजूद इसके वुहान में दोनों देशों के नेताओं की मुलाकात के विरोध का कोई औचित्य नहीं। यह दुर्भाग्यपूर्ण रहा कि कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी इस मुलाकात को लेकर कटाक्ष करने से बाज नहीं आए। इससे कूटनीति के प्रति उनकी खोखली सोच और राजनीतिक अपरिपक्वता का ही परिचय मिला। पता नहीं कैसे वह यह भूल गए कि डोकलाम विवाद के वक्त उन्होंने चीनी राजदूत से मुलाकात कर अपनी किरकिरी कराई थी? कांग्रेस को इसकी भी अनदेखी नहीं करनी चाहिए कि चीन की ओर से मिल रही चुनौती के कारण ही प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने सत्ता संभालने के बाद से पूर्वोत्तर के विकास के प्रति विशेष ध्यान दिया है।

पूर्वोत्तर के राज्य न केवल शेष देश से कटे-कटे से रहे हैं, बल्कि विकास में भी पिछड़ गए हैं। मोदी सरकार ने इस कमी को दूर करने के लिए लगातार प्रयास किए हैं। इसका उसे राजनीतिक फायदा भी मिला है। आज पूर्वोत्तर के पांच राज्यों में भाजपा या उसके सहयोगियों की सरकार है। चीन केवल अरुणाचल पर ही नजरें नहीं गड़ाए, वह पूर्वोत्तर के कुछ अन्य क्षेत्रों को लेकर भी विवाद उत्पन्न करता रहा है। भारत को परेशान करने के लिए वह कभी ब्रह्मपुत्र नदी के पानी का सहारा लेता है तो कभी सिक्किम के नाथू ला दर्रे पर समस्याएं खड़ी करता है। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक है कि भारत सरकार पूर्वोत्तर के विकास के साथ उसकी सुरक्षा पर भी विशेष ध्यान दे। चूंकि आज के युग में सैन्य टकराव कोई विकल्प नहीं इसलिए इसका औचित्य नहीं कि भारत और चीन सेना के जरिये किसी विवाद का समाधान करने के बारे में सोचें।

चीन एक बड़ी ताकत के तौर पर उभरने के बाद भी इसकी अनदेखी नहीं कर सकता कि भारत अब 1962 जैसी स्थिति में नहीं। विडंबना यह है कि इसके बावजूद वहां के मीडिया का एक हिस्सा उकसावे वाली बातें करता रहता है। उसे पता होना चाहिए कि छोटा-सा भी सैन्य टकराव आर्थिक-व्यापारिक रिश्तों पर गहरा असर डालेगा। इसके चलते चीन के विश्व महाशक्ति बनने के सपने को धक्का पहुंच सकता है। आज चीन के पास भारत जैसा विशाल बाजार और कोई नहीं और यह किसी से छिपा नहीं कि अमेरिका के साथ व्यापार संघर्ष ने उसकी समस्याएं बढ़ा दी हैं। चीन इसकी भी अनदेखी नहीं कर सकता कि भारत के साथ व्यापार संतुलन कुल मिलाकर उसके ही पक्ष में है। चीन को होने वाला भारत का निर्यात बहुत ज्यादा नहीं।

दरअसल भारत के पास कृषि उत्पादों के अलावा ऐसा बहुत कुछ है भी नहीं जो चीन को निर्यात किया जा सके और चीन अपना कृषि बाजार खोलने के लिए तैयार नहीं है। इसके विपरीत चीन बड़े पैमाने पर भारत में बुनियादी ढांचे में निवेश करने का इच्छुक है। उसकी यह इच्छा तभी पूरी हो सकती है जब रिश्ते सामान्य बने रहें और वह भारत के खिलाफ पाकिस्तान का इस्तेमाल करना छोड़े। चीन की रणनीति अक्सर हठधर्मिता वाली होती है और वह जब भी ऐसे रवैये का परिचय देता है, संबंध सुधार में बाधा आती है और अविश्वास बढ़ता है। उम्मीद है कि वुहान शिखर वार्ता के बाद चीनी नेतृत्व को यह समझने में आसानी हुई होगी कि भारत से बेहतर संबंध उसके अपने हित में हैं।

में आशंका है कि इसका एक मकसद भारत की सामरिक घेराबंदी है। इसे भारत के गले में जहरीले मोतियों की माला पहनाने वाले अभियान का अभिन्न हिस्सा ही समझा जाता है। इतना ही नहीं हाल के महीनों में नेपाल और मालदीव में चीन ने भारत के राजनयिक प्रभाव को कम करने में या उसके प्रति बैरभाव रखने वाले तत्वों को प्रत्यक्ष-परोक्ष समर्थन देने में कसर नहीं छोड़ी है। तब क्या यह समझा जाए कि भारत के सामने चीन के साथ समझौते का कोई विकल्प नहीं बचा है? ऐसा सोचना सही नहीं होगा। सच है कि भारत चीन के साथ सैनिक या आर्थिक टक्कर लेने की हालत में नहीं है और दोनों की सैनिक और आर्थिक क्षमता की तुलना करना भी नादानी है परंतु इस बात को अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए कि जब से अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रंप ने चीन के विरुद्ध व्यापार युद्ध (अर्थात कड़े आर्थिक प्रतिबंधों की घोषणा की है, तब ही से चीन के लिए नये साथियों की तलाश वाला मुद्दा प्राथमिक बन गया है। इसी कारण लंबे अरसे से तनावपूर्ण रहे चीन-जापान संबंध भी अब सुधरते नजर आ रहे हैं। यहां इस बात को दोहराने की जरूरत है कि चीन-अमेरिका व्यापार बहुत बुरी तरह चीन के पक्ष में असंतुलित है। लगभग तीन अरब डॉलर के आंकड़े तक यह राशि पहुंच चुकी है। ट्रंप के प्रतिबंध से अमेरिकी उपभोक्ताओं सहूलियतें घटेंगी, परचीनी कंपनियों को नुकसान कहीं अधिक होगा जो इनका निर्माण करते हैं। चीनी नेता इस बात से भी बहुत खिन्न है कि अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रंप ने उनसे कन्नी काटते हुए उत्तर कोरिया के नेता किम जांग उन से सीधे संवाद शुरू कर दिया है। चीनियों को यह बात नागवार गुजरी है। शी जिनपिंग पुनर्निर्वाचन के बाद माओ की तरह सर्वशक्तिमान महामानव नेता के रूप में प्रकट हुए हैं, जो चीन को उसकी खोई हस्ती फिर से वापस दिलाना चाहते हैं। निश्चय ही वह एशिया में अमेरिका जैसी किसी बाहरी शक्ति का प्रभाव बढ़ते नहीं देखना चाहते। चूंकि इस समय रूस के नेता पुतिन पश्चिमी मोर्चे पर अमेरिका और यूरोप के साथ आक्रामक राजनयिक तेवर अख्तियार किए हुए हैं, चीन इस अवसर का लाभ उठा अमेरिका के व्यापार युद्ध की चुनौती का सामना करने के लिए भारत के साथ कम से कम तात्कालिक सुलह का मार्ग चुन सकता है। भारत के लिए यह समय संभावनाओं के साथ खतरनाक चुनौतियों से भरा है। आगामी वर्ष लोक सभा चुनाव का है, और मोदी के लिए विदेश नीति के क्षेत्र में ठोस उपलब्धि आंतरिक नीतियों में शिथिलता या महंगाई आदि का प्रतिकार करने में सहायक हो सकती है। हालांकि, अनौपचारिक शिखर वार्ता के बाद न तो कोई प्रेस सम्मेलन होता है, और न ही संयुक्त विज्ञप्ति की परंपरा है। तब भी इस मुलाकात के तटस्थ मूल्यांकन को टाला नहीं जाना चाहिए।

### संभावित प्रश्न

प्रश्न. प्रधानमंत्री मोदी द्वारा चीन में 'अनौपचारिक शिखर सम्मेलन' में भाग लेना दोनों देशों के संबंधों को बेहतर बनाने में काफी मददगार सिद्ध हो सकता है। इस कथन के सन्दर्भ में भारत-चीन संबंध को स्पष्ट करें।

(250 शब्द)



### चर्चा में क्यों?

- हाल ही में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग के बीच अनौपचारिक बातचीत समाप्त हो गई है। इस मुलाकात पर दोनों देशों की जनता के साथ-साथ दुनिया की नजरें टिकी थी, क्योंकि अचानक पीएम मोदी के चीन दौर को लेकर कोई बातचीत का खास एजेंडा तय नहीं था।

### क्यों हुई अनौपचारिक बातचीत?

- दोनों देशों के बीच हुई इस अनौपचारिक बातचीत पर पहली बार देश के राजनीतिक हलकों में सहमति नहीं बनी थी और विपक्ष प्रधानमंत्री को विश्वास में नहीं लिए जाने पर सवाल उठा रहा था। बातचीत अनौपचारिक हो रही है, इसे लेकर कांग्रेस के अध्यक्ष राहुल गांधी ने एक ट्वीट कर प्रधानमंत्री से सवाल भी पूछा था।
- इस तरह की अनौपचारिक बैठक चीन सभी देशों के साथ नहीं करता है। इससे पहले उसने ओबामा और ट्रंप के साथ ही ऐसी बातचीत की है और अब मोदी के साथ तो कहीं न कहीं वो यह संकेत दे रहा है कि वो भारत के नेतृत्व को गंभीरता से लेता है और भारत की बढ़ती छवि को स्वीकार करता है।

### भारत-चीन संयुक्त आर्थिक समूह

- भारत-चीन JEG मंत्रिस्तरीय वार्ता है जिसे 1988 में तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गाँधी की चीन यात्रा के दौरान स्थापित किया गया था।
- ऐसी पिछली बैठक (10वीं JEG) सितंबर, 2014 में बीजिंग में आयोजित की गई थी, जिसमें दोनों पक्षों ने द्विपक्षीय व्यापार और आर्थिक सहयोग को बढ़ाने और इसमें विविधता लाने के लिये सहमति दी थी।
- 2012 में 9वीं JEG के दौरान दोनों पक्षों ने आर्थिक और व्यापार योजना सहयोग, व्यापार सांख्यिकीय विश्लेषण और सेवा व्यापार संवर्द्धन पर तीन वर्किंग ग्रुप स्थापित किये थे।

### 11वीं JEG के प्रमुख बिंदु

- 11वीं JEG की सह-अध्यक्षता दोनों देशों के वाणिज्य मंत्रियों द्वारा की गई थी।
- दोनों देशों ने एक निश्चित कार्ययोजना और समयसीमा के साथ एक मध्यम और दीर्घकालिक रोडमैप तैयार करने के लिये सहमति व्यक्त की, ताकि 51 बिलियन के द्विपक्षीय व्यापार घाटे का समाधान किया जा सके।
- दोनों मंत्रियों ने संतुलित एवं सतत द्विपक्षीय व्यापार को बढ़ावा देने के प्रति अपनी कटिबद्धता दोहराते हुए चीन और भारत के बीच सितंबर, 2014 में हस्ताक्षरित 'आर्थिक एवं व्यापार सहयोग के लिये पंचवर्षीय विकास कार्यक्रम' में चिह्नित पहलों को और आगे बढ़ाने पर सहमति जताई है।
- सितंबर, 2014 में व्यापार और निवेश को बढ़ावा देकर वर्ष 2019 तक द्विपक्षीय व्यापार संतुलन के लिये समझौता किया गया था।
- चीनी पक्ष ने गैर-बासमती चावल, रेपसीड भोजन, सोया भोजन, अनार एवं अनार छिलका, भिंडी, केला और अन्य फलों एवं सब्जियों से संबंधित भारतीय कृषि उत्पादों के साथ-साथ बोवाइन मीट के बाजार तक पहुँच को संवर्द्धित करने के लिये अपनी प्रतिबद्धता दोहराई।
- दोनों पक्षों ने फार्मास्यूटिकल्स के क्षेत्र में द्विपक्षीय व्यापार को बढ़ावा देने के लक्ष्य के लिये अपनी प्रतिबद्धता दोहराई, जिसमें

चीन के बाजारों को भारतीय फार्मा उत्पादों के निर्यात से जुड़े मुद्दों, जैसे- नॉन-टैरिफ बाधाओं को सुलझाना भी शामिल है।

- निवेश को बढ़ावा देने के लिये एक अधिक स्थिर, पारदर्शी और प्रीडिक्टबल कानूनी वातावरण सुनिश्चित करने हेतु द्विपक्षीय निवेश समझौते को रीनिगोशीएट करने पर भी दोनों पक्ष सहमत हुए हैं।
- दोनों पक्षों ने अपने साझा हितों को बनाए रखने के लिये विश्व व्यापार संगठन के साथ-साथ अन्य बहुपक्षीय एवं क्षेत्रीय ढाँचे के अंतर्गत सहयोग बढ़ाने पर सहमति जताने के साथ ही नियम आधारित बहुपक्षीय वैश्विक व्यापार के लिये अपनी प्रतिबद्धता दोहराई है।

### व्यापार घाटा (Trade Deficit)?

- जब कोई देश निर्यात की तुलना में आयात अधिक करता है तो इसे व्यापार घाटा कहते हैं। इसे नकारात्मक व्यापार संतुलन भी कहा जाता है।
- स्पष्ट है कि जब आयात अधिक होगा तो विदेशी मुद्रा, विशेष रूप से डॉलर में भुगतान होने के कारण देश में विदेशी मुद्रा (डॉलर) की कमी होगी।
- जब विदेशी मुद्रा में भुगतान किया जाता है, तो उसकी माँग भी बढ़ती है और रुपया उसके मुकाबले कमजोर हो जाता है।
- रुपए के कमजोर होने से उसकी कीमत में गिरावट आती है। ऐसी परिस्थिति में आयातकों को विदेशों से माल के आयात के लिये अधिक कीमत चुकानी पड़ती है।
- इस तरह आयात महँगा हो जाता है। इसके विपरीत निर्यातकों को फायदा होता है।
- व्यापार घाटे में केवल वस्तुओं के आयात-निर्यात को शामिल किया जाता है, जबकि चालू खाते के घाटे में अदृश्य मदों, यथा-सेवाओं को भी शामिल किया जाता है।
- वस्तुओं के मामले में भारत हमेशा से ही घाटे की स्थिति में रहा है, क्योंकि भारत के समग्र आयात में कच्चे तेल की हिस्सेदारी काफी अधिक है, किन्तु सेवाओं के मामले में भारत की स्थिति सकारात्मक रहती है।
- भारत में कच्चे तेल की माँग का एक बड़ा भाग आयात से पूरा किया जाता है। कच्चे तेल का अंतर्राष्ट्रीय व्यापार डॉलर में होता है।
- जब अंतर्राष्ट्रीय बाजार में कच्चे तेल की कीमतें बढ़ती हैं, तो उसका प्रभाव भारत के व्यापार घाटे पर पड़ता है।
- अधिक व्यापार घाटे का मतलब है कि कोई देश कुछ उत्पादों को घरेलू स्तर पर उत्पादित करने की बजाय अन्य देशों से आयात कर रहा है।
- इससे स्थानीय कंपनियाँ व्यवसाय से बाहर निकलना शुरू कर देती हैं और उस क्षेत्र में रोजगारों की संख्या भी कम होने लगती है।
- यही कारण है कि हाल ही में अमेरिका ने चीन के साथ द्विपक्षीय व्यापार में उच्च व्यापार घाटे (लगभग 370 बिलियन डॉलर) के कारण अमेरिका में 20 लाख नौकरियों के नुकसान का हवाला देते हुए चीन से लगभग 60 अरब डॉलर के आयात पर शुल्क आरोपित किया है।

## न्यायिक सुधार का अधूरा एजेंडा, निचली अदालत के ढांचे को सुधारने की पहल जरूरी

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-2 (शासन व्यवस्था) से संबंधित है।

हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय के चार वरिष्ठ न्यायाधीशों ने प्रेस कॉन्फ्रेंस करके सर्वोच्च न्यायालय में मुकदमों को पसंदीदा बेंच को दिए जाने का आरोप लगाया। इस संदर्भ में हिन्दी समाचार पत्र 'जागरण' में प्रकाशित लेख का सार दिया जा रहा है, जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।

इस वर्ष जनवरी माह में जब सुप्रीम कोर्ट के चार वरिष्ठ न्यायाधीशों ने एक प्रेस कॉन्फ्रेंस करके अपनी संस्था के आंतरिक प्रशासन की समस्याओं को सामने रखते हुए लोकतंत्र को खतरे में बताया था तब यह स्पष्ट हुआ था कि शीर्ष अदालत में सब कुछ ठीक नहीं है। इस प्रेस कॉन्फ्रेंस ने सारे देश का ध्यान इसलिए खींचा था, क्योंकि चारों न्यायाधीशों ने मुख्य न्यायाधीश पर यह आरोप भी लगाया था कि वह संवेदनशील मुकदमों को पसंदीदा बेंच में भेज रहे हैं। ऐसे आरोपों ने जनता को इसलिए अवाक किया, क्योंकि वह इस संस्था को निष्पक्ष संस्था के तौर पर देखने के साथ ही यह मानकर भी चलती है कि जब कहीं से न्याय नहीं मिलेगा तो सुप्रीम कोर्ट सहारा बनेगा। उक्त प्रेस कॉन्फ्रेंस के बाद ये संकेत दिए गए कि सुप्रीम कोर्ट के सभी न्यायाधीश आपस में मिल-बैठकर समस्या हल कर लेंगे, लेकिन ऐसा नहीं हुआ और सुप्रीम कोर्ट में उठापटक कायम रही। इस उठापटक के जारी रहने से यही जाहिर हो रहा कि वरिष्ठ न्यायाधीशों की चिंता केवल सुप्रीम कोर्ट की कथित आंतरिक समस्याओं तक ही सीमित है और उनके एजेंडे पर ऐसा कुछ नहीं कि सुप्रीम कोर्ट से लेकर निचली अदालतों तक की व्यवस्था सुधरे। अब तो ऐसा भी लगता है कि वरिष्ठ न्यायाधीशों की चिंता को सुप्रीम कोर्ट के चुनिंदा वकीलों ने भी अपने अहं की लड़ाई का हिस्सा बना लिया है। इसका संकेत इससे मिलता है कि न्यायिक व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन की बात कोई नहीं कर रहा।

पिछले दिनों न्यायाधीश चेलमेश्वर ने एक साक्षात्कार में कहा कि अगर दीपक मिश्र के बाद रंजन गोगोई को मुख्य न्यायाधीश नहीं बनाया जाता तो वे आशंकाएं सच साबित होंगी जो उन्होंने प्रेस कॉन्फ्रेंस में जताई थीं। इसी के साथ उन्होंने यह भी कहा कि मुख्य न्यायाधीश के खिलाफ महाभियोग लाया जाना समस्या का हल नहीं। ज्ञात हो कि उन दिनों कुछ राजनीतिक दल और खासकर कांग्रेस जस्टिस दीपक मिश्र के खिलाफ महाभियोग लाने की कवायद कर रही थी। न्यायाधीश चेलमेश्वर के इस साक्षात्कार के बाद उनके साथ प्रेस कॉन्फ्रेंस करने वाले एक अन्य न्यायाधीश कुरियन जोसेफ ने मुख्य न्यायाधीश एवं अन्य न्यायाधीशों को एक चिट्ठी लिखकर कोलेजियम की सिफारिश पर केंद्र सरकार की चुप्पी पर सवाल उठाए। उनका आग्रह था कि इस मामले में सरकार से सवाल पूछना चाहिए।

कोलेजियम ने फरवरी में न्यायाधीश केएम जोसेफ और इंदु मल्होत्रा को सुप्रीम कोर्ट का जज नियुक्त करने की सिफारिश की थी, लेकिन केंद्र सरकार ने न तो यह बताया कि कोलेजियम की सिफारिश मानने में देर क्यों हो रही है और न ही सिफारिश पर अपनी कोई आपत्ति प्रकट की। कोई स्पष्टीकरण न आने के चलते यह माना गया कि केंद्र सरकार केएम जोसेफ को इसलिए सुप्रीम कोर्ट का न्यायाधीश नियुक्त नहीं करना चाहती, क्योंकि उत्तराखंड में कांग्रेस सरकार को बर्खास्त करने संबंधी फैसले को उन्होंने ही खारिज किया था। समस्या केवल यह नहीं है कि सुप्रीम कोर्ट के वरिष्ठ न्यायाधीश सवाल पर सवाल कर रहे हैं, बल्कि यह भी है कि कुछ बकील मुकदमों के आवंटन की व्यवस्था को लेकर अपनी मुहिम छेड़े हुए हैं। वे मुकदमा आवंटन की व्यवस्था को पारदर्शी बनाने के लिए याचिकाएं भी दायर कर रहे हैं। बीते दिनों एक ऐसी ही याचिका का निपटारा करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि यह तय करने का अधिकार मुख्य न्यायाधीश को ही है कि कौन सा मामला किस बेंच को सौंपा जाएगा, लेकिन इसके बाद इसी आशय की एक और याचिका दायर कर दी गई। इसके पहले न्यायाधीश चेलमेश्वर ने ऐसी याचिका सुनने से यह कहते हुए इन्कार कर दिया कि वह नहीं चाहते कि उनके फैसले को पलट दिया जाए। ऐसा कहकर उन्होंने एक बार फिर दीपक मिश्र को निशाने पर लिया। यह रवैया इसलिए ठीक नहीं, क्योंकि सुप्रीम कोर्ट की ओर से यह स्पष्ट किया जा चुका है कि मुकदमों के आवंटन में न्यायाधीशों की वरिष्ठता कोई आधार ही नहीं। इस फैसले के अनुसार सुप्रीम कोर्ट के तो सभी जज अनुभवी होते हैं, चाहे वे हाईकोर्ट से आए हों या फिर बार से।

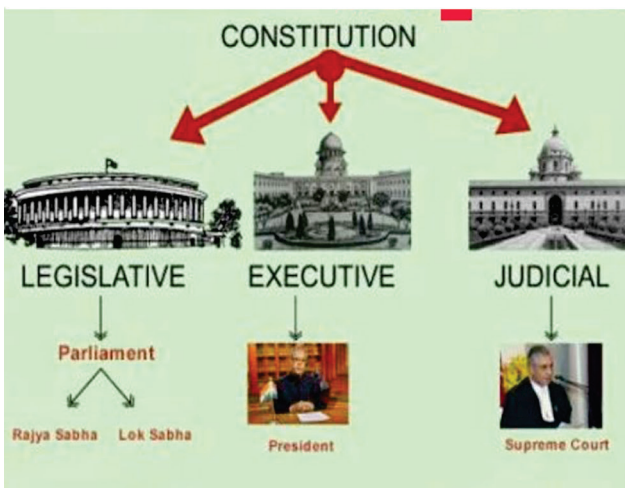
सुप्रीम कोर्ट के जो न्यायाधीश मुख्य न्यायाधीश पर निशाना साध रहे हैं, वे यह नहीं स्पष्ट कर रहे हैं कि किस तरह मुकदमों के आवंटन में मनमानी हो रही है? एक ओर इसे आंतरिक मामला बता रहे हैं और दूसरी ओर उसे सार्वजनिक भी कर रहे हैं। उनकी ओर से यह भी साफ नहीं किया जा रहा कि संवेदनशील मामलों से उनका क्या आशय है? वे यह भी माहौल बना रहे हैं कि मुख्य न्यायाधीश केंद्र सरकार के नजदीक हैं और फैसले केंद्र सरकार के मन मुताबिक दिए जा रहे हैं। विपक्ष इस माहौल का लाभ उठाने में लगा हुआ है। मुख्य न्यायाधीश के खिलाफ महाभियोग लाने की पहल से तो यही साबित होता है। क्या यह विचित्र नहीं कि विपक्षी नेताओं ने महाभियोग लाने की बातें तो कीं, लेकिन यह नहीं बताया कि किस आरोप में?

यह कोई पहली बार नहीं जब सुप्रीम कोर्ट के जजों के बीच के मतभेद सामने आए हों। सुप्रीम कोर्ट में तमाम मसले ऐसे होते हैं जिनमें नैतिकता का सवाल होता है। इसे लेकर न्यायाधीशों के बीच मतभेद होते ही हैं और कई बार फैसला बहुमत के जरिये होता है। ऐसा होना स्वाभाविक है, लेकिन यह स्वाभाविक नहीं कि न्यायाधीशों के बीच के मतभेद हद से ज्यादा बढ़ जाएं। सुप्रीम कोर्ट में विवाद को देखते हुए केंद्र सरकार को न्यायिक व्यवस्था में सुधार के साथ जजों की नियुक्ति प्रणाली में बदलाव की पहल करनी चाहिए। वैसे भी कॉलेजियम के जरिये न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रणाली दोषपूर्ण साबित हो चुकी है। ऐसा शायद ही कोई लोकतांत्रिक देश होगा जहां जजों की नियुक्ति खुद जज ही करते हों। कॉलेजियम प्रणाली के विकल्प के रूप में राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग को प्रस्तुत किया गया था, लेकिन उसे सुप्रीम कोर्ट ने खारिज कर दिया और मेमोरेंडम आफ प्रोसिजर का मामला भी अभी अधर में है।

आवश्यक केवल यह नहीं कि केंद्र सरकार न्यायिक नियुक्ति आयोग को नए सिरे से बनाने की पहल करे, बल्कि यह भी है कि निचली अदालतों में मुकदमों के बढ़ते बोझ को कम करने का कोई उपाय निकाले, क्योंकि इससे बड़ी विडंबना कोई और नहीं कि आम लोगों को समय पर न्याय न मिले। यह समय पर न्याय न मिल पाने का ही दुष्परिणाम है कि सामाजिक असंतोष के साथ-साथ उत्पीड़न-शोषण और भ्रष्टाचार के मामले भी बढ़ते जा रहे हैं। अगर निचले स्तर पर न्याय आसानी से और समय पर उपलब्ध हो तो उसका सीधा लाभ समाज में बढ़ती खाई को पाटने के रूप में मिलेगा। चूंकि सुप्रीम कोर्ट में जारी उठापटक का समाधान केवल उच्चतर न्यायिक प्रणाली को ही राहत देगा इसलिए निचली अदालतों के न्यायिक ढांचे को सुधारने की पहल कहीं ज्यादा जरूरी है। ध्यान रहे कि निचली अदालतों में जहां करीब पौने तीन करोड़ मुकदमे लंबित हैं वहीं न्यायाधीशों के लगभग पांच हजार पद रिक्त हैं। इसके अतिरिक्त निचली अदालतों की संख्या बढ़ाने की भी जरूरत है। हैरत की बात है कि इस जरूरत की पूर्ति हो, इसके लिए मुश्किल से ही कोई जनहित याचिका लगती है और दूसरी ओर सुप्रीम कोर्ट की कथित समस्याओं को लेकर याचिकाओं का अंबार लगा है। अब जब यह स्पष्ट है कि निचली अदालतों के समाधान को लेकर न तो उच्च न्यायालय सक्रियता दिखा रहे हैं और न ही राज्य सरकारें तब फिर केंद्र सरकार को इस दिशा में आगे बढ़ना ही चाहिए।

# Supreme Court of India

## क्या भारतीय न्यायपालिका स्वतंत्र है?



### न्यायाधीशों की नियुक्ति

- भारतीय संविधान में स्पष्ट कहा गया है कि न्यायपालिका की सलाह से कार्यपालिका न्यायाधीशों की नियुक्ति करेगी। इस संबंध में अनुच्छेद 124 और 217 प्रासंगिक प्रावधान हैं।
- अनुच्छेद 124 में उल्लिखित है कि उच्चतम न्यायालय के और राज्यों के उच्च न्यायालयों के ऐसे न्यायाधीशों से परामर्श करने के पश्चात, जिनसे राष्ट्रपति इस प्रयोजन के लिए परामर्श करना आवश्यक समझे, राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा उच्चतम न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश को नियुक्त करेगा, परंतु मुख्य न्यायाधीश से भिन्न किसी न्यायाधीश की नियुक्ति की दशा में भारत के प्रधान न्यायाधीश से सदैव परामर्श किया जायेगा।
- अनुच्छेद 217 में उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति का उल्लेख है। इसमें कहा गया है कि भारत के प्रधान न्यायाधीश से, उस राज्य के राज्यपाल से और मुख्य न्यायाधीश से भिन्न किसी न्यायाधीश की नियुक्ति की दशा में उस उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करने के पश्चात, राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित। अधिपत्र द्वारा उच्च न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश को नियुक्त करेगा।

### कॉलेजियम व्यवस्था?

- देश की अदालतों में जजों की नियुक्ति की प्रणाली को कॉलेजियम व्यवस्था कहा जाता है।
- कॉलेजियम व्यवस्था के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के नेतृत्व में बनी वरिष्ठ जजों की समिति जजों के नाम तथा नियुक्ति का फैसला करती है।
- सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय में जजों की नियुक्ति तथा तबादलों का फैसला भी कॉलेजियम ही करता है। उच्च न्यायालय के कौन से जज पदोन्नत होकर सर्वोच्च न्यायालय जाएंगे यह फैसला भी कॉलेजियम ही करता है।
- उल्लेखनीय है कि कॉलेजियम व्यवस्था का उल्लेख न तो मूल संविधान में है और न ही उसके किसी संशोधित प्रावधान में। वर्तमान में कॉलेजियम व्यवस्था के अध्यक्ष चीफ जस्टिस दीपक मिश्रा हैं और जस्टिस जे. चेलामेश्वरम, जस्टिस रंजन गोगोई, जस्टिस मदन बी. लोकूर और जस्टिस कुरियन जोसेफ इसके सदस्य हैं।

### विवाद?

- दरअसल, कॉलेजियम पाँच लोगों का समूह है और इन पाँच लोगों में शामिल हैं- भारत के मुख्य न्यायाधीश और सर्वोच्च न्यायालय के चार वरिष्ठ न्यायाधीश। कॉलेजियम के द्वारा जजों के नियुक्ति का प्रावधान संविधान में कहीं नहीं है।
- कॉलेजियम व्यवस्था को लेकर विवाद इसलिए है क्योंकि यह व्यवस्था नियुक्ति का सूत्रधार और नियुक्तकर्ता दोनों स्वयं ही है। इस व्यवस्था में कार्यपालिका की भूमिका बिल्कुल नहीं है या है भी तो बस मामूली।

### सुधार के प्रयास

- गौरतलब है कि केंद्र सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों की नियुक्ति और तबादले के लिये राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग अधिनियम बनाया था।
- उल्लेखनीय है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति करने वाले इस आयोग की अध्यक्षता भारत के मुख्य न्यायाधीश को करनी थी। इसके अलावा, सर्वोच्च न्यायालय के दो वरिष्ठ न्यायाधीश, केन्द्रीय विधि मंत्री और दो जानी-मानी हस्तियाँ भी इस आयोग का हिस्सा थीं।
- आयोग में जानी-मानी दो हस्तियों का चयन तीन सदस्यीय समिति को करना था, जिसमें प्रधानमंत्री, मुख्य न्यायाधीश और लोकसभा में नेता विपक्ष या सबसे बड़े विपक्षी दल के नेता शामिल थे।
- आयोग से संबंधित एक दिलचस्प बात यह थी कि अगर आयोग के दो सदस्य किसी नियुक्ति पर सहमत नहीं हुए तो आयोग उस व्यक्ति की नियुक्ति की सिफारिश नहीं करेगा।

### कॉलेजियम की समीक्षा का प्रस्ताव

- शीर्ष न्यायपालिका ने वर्ष 1961 में एस.पी. गुप्ता मामले में अपने लिये वरीयता का दावा त्याग दिया था और जजों की नियुक्ति और उनके स्थानांतरण के सिलसिले में होने वाले पत्र व्यवहार को गोपनीय नहीं रखने का आदेश देते हुए कहा था कि पारदर्शिता के बिना भ्रष्टाचार और भाई-भतीजावाद मुक्त प्रशासन की कल्पना नहीं की जा सकती।
- इसी प्रकार 31 अगस्त, 2017 को केनरा बैंक बनाम सी.एस. स्याम मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने टिप्पणी की कि जब जजों की नियुक्ति, पदस्थापना और स्थानांतरण से संबंधित कारणों और उनके प्रस्तावों के बारे में जाना जा सकता है तो फिर क्लर्कों और अन्य सरकारी अधिकारियों के बारे में सूचना निजी कैसे हो सकती है और इस बारे में कुछ भी सार्वजनिक क्यों नहीं किया जा सकता?

### संभावित प्रश्न

प्रश्न. “भारतीय संविधान में न्यायाधीशों को विशेष प्रावधान प्रदान किया गया है ताकि न्यायपालिका की गरिमा बनी रहे। ऐसे में न्यायाधीशों के बीच आपसी विवाद से न्यायपालिका की गरिमा और स्वतंत्रता पर प्रश्न चिन्ह लग गया है।” इस कथन का सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीशों के बीच चल रहे विवाद के आलोक में विश्लेषण कीजिये।

(250 शब्द)



# न्यायपालिका पर ओछी राजनीति

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-2 (शासन व्यवस्था) से संबंधित है।

हाल ही में कुछ राजनीतिक दलों द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के खिलाफ महाभियोग का प्रस्ताव लाया गया। जिसके लिए राज्यसभा के सभापति को पाँच आधार पेश किए गए हैं। इस संदर्भ में हिन्दी समाचार पत्रों 'बिजनेस स्टैंडर्ड', 'नवभारत टाइम्स', 'अमर उजाला', 'जनसत्ता', 'दैनिक जागरण' एवं 'राष्ट्रीय सहारा' में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।

## राजनीति का नया हथकंडा 'महाभियोग', CJI के खिलाफ कांग्रेस के तर्कों में दम नहीं (दैनिक जागरण)

कांग्रेस ने छह विपक्षी दलों के साथ मिलकर अपनी संकीर्ण राजनीतिक महत्वाकांक्षा के तहत जिस तरह सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्र के खिलाफ महाभियोग लाने का फैसला किया उसका नुकसान पूरी न्यायपालिका और अंततः देश को उठाना पड़ सकता है। महाभियोग के संसद के दोनों सदनों से पारित होने के कहीं कोई आसार नहीं, इससे कांग्रेस भी अनभिज्ञ नहीं हो सकती और इसका मतलब है कि महाभियोग प्रस्ताव के पीछे शुद्ध राजनीतिक मकसद या बदले की राजनीति है, जैसा कि वित्तमंत्री ने कहा। इसका संकेत इससे भी मिलता है कि जज लोया मामले में मुख्य न्यायाधीश वाली पीठ की ओर से फैसला आने के अगले ही दिन कांग्रेस ने महाभियोग का नोटिस राज्यसभा के सभापति को दे दिया। कांग्रेस जज लोया मामले में सुप्रीम कोर्ट का फैसला आने के पहले से ही मुख्य न्यायाधीश के खिलाफ महाभियोग लाने की तैयारी कर रही थी। कांग्रेसी नेता और वरिष्ठ वकील कपिल सिब्बल की पहल पर महाभियोग प्रस्ताव कांग्रेस लाई। कांग्रेस इसके पीछे जो तर्क दे रही है उनमें कोई गंभीरता नहीं नजर आती और शायद इसीलिए कुछ विपक्षी दलों ने उससे यह पूछा कि आखिर मुख्य न्यायाधीश पर जो आरोप हैं उसके सुबूत कहां हैं?

कांग्रेस ने मुख्य न्यायाधीश पर जो आरोप लगाए उनमें एक यह है कि वह चुनिंदा मामले मनपसंद बेंच भेज रहे हैं। सुप्रीम कोर्ट के चार वरिष्ठ न्यायाधीशों ने भी कुछ ऐसा ही आरोप लगाया था। इस आरोप के केंद्र में जज लोया की मौत की जांच वाला मामला भी था। सुप्रीम कोर्ट ने अपने फैसले में यह स्पष्ट किया कि जज लोया की मौत स्वाभाविक थी और उनके निधन के वक्त जो चार जज साथ में थे उनकी बातों को खारिज करने का कोई मतलब नहीं। यह फैसला देते हुए सुप्रीम कोर्ट ने उन वकीलों को भी आड़े हाथों लिया था जो लोया की मौत की स्वतंत्र जांच के लिए बेजा दबाव बना रहे थे। महाभियोग प्रस्ताव में मुख्य न्यायाधीश के खिलाफ एक अन्य आरोप

## न चलने पाए मनमानी (राष्ट्रीय सहारा)

अप्रत्याशित रुख अपनाते हुए सात विपक्षी पार्टियों ने आखिर, भारत के प्रधान न्यायाधीश जस्टिस दीपक मिश्रा के खिलाफ महाभियोग चलाए जाने का नोटिस दे ही दिया। उपराष्ट्रपति एवं राज्य सभा के सभापति वेंकैया नायडू ने लगे हाथ इसे नामंजूर भी कर दिया। चूंकि इस प्रकार के नोटिस के गुण-दोष जजेस (इन्क्वायरी) एक्ट, 1968 के तहत गठित जांच समिति द्वारा जांचे जाने का प्रावधान है, इसलिए तर्क-वितर्क का विषय है कि क्या उपराष्ट्रपति अपने से महाभियोग के गुण-दोष की जांच कर सकते हैं। मामला जल्द ही सुप्रीम कोर्ट में पहुंच सकता है। ऐसा होता है, तो प्रधान न्यायाधीश को इस बाबत याचिका की सुनवाई के लिए पीठ का गठन नहीं करना चाहिए क्योंकि तभी हमारी न्यायपालिका की विश्वसनीय बचाए रखी जा सकेगी। जस्टिस मिश्रा के खिलाफ एक आरोप यह है कि "मास्टर ऑफ द रोस्टर" के तौर पर उन्होंने अपने अधिकारों का मनमाना उपयोग किया। ग्यारह अप्रैल को प्रधान न्यायाधीश की अध्यक्षता वाली तीन सदस्यीय पीठ ने अपने फैसले में पुष्टि की कि पीठों का गठन करने के मद्देनजर प्रधान न्यायाधीश को पूरा अधिकार है। इसी प्रकार का आदेश प्रधान न्यायाधीश की अध्यक्षता वाली पांच सदस्यीय पीठ ने नवम्बर, 2017 में पारित किया था। सुप्रीम कोर्ट के इतिहास में पहली दफा था, जब एक पीठ के न्यायिक आदेश, जो जस्टिस जे. चेलेश्वर की अध्यक्षता वाली पीठ ने पारित किया था, को चौबीस घंटों के भीतर पलट दिया गया था। जस्टिस एके सीकरी तथा जस्टिस अशोक भूषण की दो सदस्यों वाली अन्य पीठ भी इसी हफ्ते शांति भूषण की याचिका पर विचार करने वाली है। इस प्रकार, मौजूदा संकट के मूल में पीठ का गठन किए जाने का मुद्दा ही प्रमुख है, और प्रधान न्यायाधीश की मुखालफत किए बिना कुछ करना होगा। जस्टिस डी. वाई. चंद्रचूड़ ने 11 अप्रैल को दिए अपने 16 पृष्ठीय आदेश में कहा था, "संवैधानिक विश्वास का संग्राहक होने के नाते प्रधान न्यायाधीश अपने आप में एक संस्थान हैं।" इसलिए हमसे कहा जाता है कि प्रधान न्यायाधीश

प्रसाद एजुकेशनल ट्रस्ट संबंधी है। आरोप है कि जो शख्स इस ट्रस्ट को अदालत से राहत दिलाने की कोशिश कर रहा था उसे मुख्य न्यायाधीश ने गैर कानूनी तरीके से लाभ पहुंचाया और इस मामले में जब सीबीआई ने एक जज के खिलाफ एफआईआर दर्ज करने की इजाजत मांगी तो उन्होंने जांच की इजाजत देने से इन्कार कर दिया। तीसरा आरोप उस याचिका से संबंधित है जिसमें प्रसाद एजुकेशनल ट्रस्ट मामले में जांच की मांग की गई थी। एक अन्य आरोप गलत हलफनामा देकर जमीन हासिल करने का है। इन आरोपों के संदर्भ में इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि प्रसाद ट्रस्ट मामले में भी प्रशांत भूषण और उनके साथी वकील सक्रिय थे और जज लोया मामले में भी।

एक तरह से कुछ वरिष्ठ वकीलों की तरह कांग्रेस भी यह माहौल बनाने की कोशिश कर रही है कि मुख्य न्यायाधीश केंद्र सरकार के इशारे पर काम कर रहे हैं। ऐसा माहौल बनाना न्यायपालिका की गरिमा गिराने वाला काम है। संवैधानिक संस्थाओं की गरिमा गिराना कांग्रेस के लिए नई बात नहीं है। लंबे समय तक के अपने शासन में कांग्रेस ने एक के बाद एक संवैधानिक संस्थाओं की गरिमा गिराने का काम किया है। कांग्रेस को भले ही अभी अहसास न हो कि मुख्य न्यायाधीश की छवि खराब कर वह न्यायपालिका का कितना बड़ा नुकसान कर रही है, लेकिन देर-सवेर उसे अपनी गलती का आभास अवश्य होगा। बिना किसी ठोस सबूत मुख्य न्यायाधीश को कठघरे में खड़ा करना लोकतंत्र के लिए शुभ नहीं, लेकिन शायद कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी को इसकी परवाह नहीं। न्यायपालिका और खासकर सुप्रीम कोर्ट के ज्यादातर निर्णय ऐसे होते हैं जिनसे कोई न कोई पक्ष आहत महसूस करता है। क्या ऐसे सभी मामलों में पराजित पक्ष जजों की निष्ठा पर सवाल खड़े करने लगेगा? ऐसा लगता है कि कुछ वरिष्ठ वकीलों ने जनहित याचिकाओं को अपने एजेंडे का हिस्सा बना लिया है। अगर कोई फैसला उनके मन-मुताबिक नहीं होता तो वे न्यायाधीशों को कठघरे में खड़ा करने लगते हैं। शायद इसी कारण सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि जज लोया मामले की याचिका आपराधिक अवमानना के समान थी और उसका मकसद न्यायपालिका पर हमला करना था। सुप्रीम कोर्ट ने यह भी पाया कि इस मामले में वकील सुबूत गढ़ने की कोशिश कर रहे थे। सुप्रीम कोर्ट ने जनहित याचिकाओं के दुरुपयोग का जिक्र करते हुए कहा कि कई बार पता ही नहीं चलता कि जनहित याचिकाओं के पीछे असली चेहरा कौन है? सुप्रीम कोर्ट के अनुसार जनहित याचिकाएं जरूरी हैं, लेकिन उनका दुरुपयोग चिंताजनक हैं। उसमें यह भी पाया कि सतही या फिर खास मकसद से जनहित याचिकाओं से अदालत का वक्त खराब किया जा रहा है, जबकि इन याचिकाओं का लक्ष्य दबे-कुचले और वंचित लोगों को न्याय दिलाना है। दरअसल एजेंडे वाले कुछ वरिष्ठ वकीलों का अहं इतना अधिक बढ़ गया है कि वे खुद को जजों से भी बड़ा समझने लगे हैं। जज लोया के मामले में वकीलों के रवैये से यही साबित होता है कि हर हाल में मनमाफिक फैसला हासिल करने की कोशिश हो रही थी और जब उसमें सफलता नहीं मिली तो मुख्य न्यायाधीश के खिलाफ अभियान छेड़ दिया गया।

के फैसलों पर सवाल न किया जाए। तो इसी तर्क के आधार पर क्या राष्ट्रपति भवन संस्थान नहीं है? क्या प्रधानमंत्री कार्यालय हमारे लोकतंत्र का महत्वपूर्ण संस्थान नहीं है? क्या संसद सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्थान नहीं है? इन सवालों के उत्तर सकारात्मक हैं, तो कैसे इन उच्च संवैधानिक पदधारियों के फैसले जब-तब उच्च न्यायालयों और सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा रोक लिए जाते हैं? सच तो यह है कि मनुष्य देवदूत होते तो संवैधानिक तरीकों से लोकसेवकों के अधिकार सीमित करने की जरूरत नहीं पड़ती। न्यायाधीश भी हमारी-आपकी तरह इंसान हैं, इसलिए दोषक्षम्य होते हैं। न्यायाधीश सरकारी मनमानी से बचने का हमारा आखिरी संबल होते हैं, इसलिए उन्हें सरकारी नियंत्रण से पृथक बनाए रखना होगा। लेकिन इसी प्रकार का संरक्षण प्रधान न्यायाधीशों की “प्रशासनिक कार्यवाहियों” से बचने के लिए भी जरूरी है। इसलिए नागरिक स्वतंत्रताओं को प्रधान न्यायाधीशों के अधिकारों से कोई खतरा महसूस होता है, तो प्रकाश चंद (1998) जैसे मामलों में पूर्व में दिए जा चुके फैसलों, जिनमें प्रधान न्यायाधीश को “अब्सॉल्यूट” मास्टर ऑफ द रोस्टर कहा गया था, की तत्काल समीक्षा की जानी चाहिए। संवैधानिक रूप से देखें तो न्यायपालिका अनुच्छेद 12 के तहत “राज्य” नहीं है। लेकिन नरेश एस. मिराजकर (1967) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने स्वयं अदालत के “न्यायिक” और “प्रशासनिक” अधिकारों के बीच अंतर किया था। इसलिए जब प्रधान न्यायाधीश “प्रशासनिक” क्षमता में कोई फैसला करते हैं, तो उनके कार्य यकीनन समानता के अधिकार सहित मूलभूत अधिकारों का विषय होते हैं। समानता का अधिकार में मनमानेपन के खिलाफ अधिकार निहित है। ईपी रोयप्पा (1973) मामले ने सुप्रीम कोर्ट ने समानता संबंधी संरक्षण को विस्तार दिया जब उसने कहा कि “सकारात्मकता से देखें तो समानता मनमानेपन की विरोधात्मक है। वास्तव में, समानता और मनमानापन एक दूसरे के कट्टर शत्रु हैं; एक का गणतंत्र में कानून के शासन से वास्ता है, तो वहीं दूसरा पूरी तरह से किसी अधीश्वर की सनक और मर्जी से जुड़ा है।” तुलसीराम पटेल (1985) मामले में सुप्रीम कोर्ट ने कहा था कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का पालना न होना भी समानता के अधिकार का हनन है। इसलिए प्रधान न्यायाधीश की अपने अधिकारों संबंधी मामलों में शिरकत प्राकृतिक न्याय के मूलाधिकार में विश्वास रखने यानी “कोई भी अपने मामले में जज नहीं होगा” जैसा सोचने वालों को नहीं जंचता। सुप्रीम कोर्ट रूल्स, 2013, जो संविधान के अनुच्छेद 145 के तहत बनाए गए हैं, कहते हैं कि प्रधान न्यायाधीश मास्टर ऑफ रूल्स हैं। लेकिन पीठों का गठन एक “प्रशासनिक कार्य” है, इसलिए यह कार्य प्रधान न्यायाधीश की मर्जी पर नहीं छोड़ा जा सकता। इसलिए पीठ का गठन “कानूनन” भले ही उल्लंघना न हो लेकिन यकीनन ‘कानून के शासन’ के आदर्श के विपरीत है। कई दफा कानून की भावना कानून से ज्यादा महत्वपूर्ण होती है। कहना न होगा कि सभी न्यायाधीश समान हैं, वरिष्ठता का पीठ के गठन पर

यह सही है कि भ्रष्टाचार ने तमाम अन्य क्षेत्रों की तरह न्यायपालिका में भी अपने पैर फैलाए हैं, लेकिन मुख्य न्यायाधीश के खिलाफ महाभियोग के कुछ ठोस आधार होने चाहिए। यह ठीक नहीं कि वरिष्ठ वकीलों सरीखी लामबंदी राजनीतिक दल भी करें। मुख्य न्यायाधीश के खिलाफ महाभियोग प्रस्ताव का नोटिस इसी लामबंदी को ही रेखांकित कर रहा है। यह लामबंदी सही नहीं, इसका संकेत इससे भी मिलता है कि पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह और सलमान खुर्शीद की असहमति के बाद भी महाभियोग प्रस्ताव का नोटिस दिया गया।

महाभियोग प्रस्ताव लाने जा रही कांग्रेस और उसके साथ खड़े राजनीतिक दल इस पर कुछ ज्यादा ही जोर दे रहे हैं कि मुख्य न्यायाधीश की कार्यशैली से लोकतंत्र खतरे में आ गया है। अगर वास्तव में ऐसा है तो फिर महाभियोग प्रस्ताव लाने वाले दलों को बताना चाहिए कि वे जानबूझकर ऐसा काम करने क्यों जा रहे जिसके पूरा होने की कोई उम्मीद नहीं? क्या कारण है कि कांग्रेस समेत महज छह दलों को ही लोकतंत्र खतरे में नजर आ रहा है? एक सवाल यह भी है कि क्या राजनीतिक भ्रष्टाचार और राजनीति के भ्रष्ट तौर-तरीके लोकतंत्र के लिए ज्यादा बड़ा खतरा नहीं? सच तो यह है कि लोकतंत्र को सबसे ज्यादा नुकसान राजनीतिक दलों की कार्यप्रणाली से पहुंचा है। आज भाजपा और वाम दलों को छोड़ दें तो ज्यादातर दल घोर सामंती प्रवृत्ति यानी गैर लोकतांत्रिक तरीके से चल रहे हैं। क्या ऐसे तरीके से लोकतंत्र मजबूत हो रहा है? राजनीतिक दलों ने जात-पांत, ऊंच-नीच और क्षेत्र-मजहब की राजनीति करने के साथ चुनाव जीतने के लिए हर तरह के छल-छद्म भी डंके की चोट पर किए हैं। विडंबना यह है कि बिना किसी रोक-टोक ऐसा काम करने वाले राजनीतिक दल मुख्य न्यायाधीश के खिलाफ महाभियोग लाने का आधार यह बता रहे हैं कि उन पर कुछ लांछन लगे हैं।

### खतरनाक नजीर ( बिजनेस स्टैंडर्ड )

राज्यसभा में सात विपक्षी दलों ने देश के प्रधान न्यायाधीश दीपक मिश्रा के खिलाफ महाभियोग की प्रक्रिया शुरू की है। संवैधानिक संदर्भ में इस घटना के महत्व को बढ़ाचढ़ाकर नहीं प्रस्तुत किया जा सकता। इससे देश की विधायिका और न्यायपालिका के बीच का नाजुक रिश्ता प्रभावित हो सकता है। साथ ही न्यायिक स्वायत्तता और न्यायिक शुचिता के सार्वजनिक आकलन का प्रश्न और जटिल हो सकता है। जाहिर है यह कदम आखिरी उपाय के तौर पर उठाया जाना चाहिए और इससे कोई राजनीतिक लाभ नहीं जुड़ा होना चाहिए। परंतु अभी यह स्पष्ट नहीं है कि मामला ऐसा ही है। विपक्षी नेताओं ने इस संबंध में जो वक्तव्य दिए हैं उनसे यही प्रतीत होता है कि विपक्ष महाभियोग प्रस्ताव के जरिये यह स्थापित करना चाहता है कि न्यायपालिका और कार्यपालिका बेहद करीब हैं। यह महाभियोग का उद्देश्य नहीं है, न ही इसका संबंध उन आरोपों के स्तर से है जो विपक्ष ने प्रधान न्यायाधीश पर लगाए हैं।

कोई असर नहीं पड़ता। लेकिन समानता का यह भी तात्पर्य होता है कि कनिष्ठ न्यायाधीशों को वरिष्ठ न्यायाधीशों की तरह देखा जाए। उन्हें संवैधानिक पीठों से दूर रखने का यकीनन गलत संकेत गया है। चार वरिष्ठतम न्यायाधीशों द्वारा संवाददाता सम्मेलन करने के उपरांत प्रधान न्यायाधीश ने जो रोस्टर तैयार किया था, उसमें कुछ विषयों को एक से ज्यादा न्यायाधीशों को सौंप दिया गया। प्रधान न्यायाधीश अपने से ही तय कर रहे हैं कि किसे कौन-सा मामला दिया जाए। इसलिए कह सकते हैं कि स्थिति में सुधार नहीं है। सबसे बड़ी बात तो यह कि प्रधान न्यायाधीश ने सभी महत्वपूर्ण मामलों को अपने लिए रख छोड़ा है। लेकिन उनके पास मौका है कि पीठ के गठन संबंधी सुप्रीम कोर्ट रूल्स में संशोधन की दृष्टि से सक्रियता दिखाएं। ऐसी प्रक्रिया बनाई जाए कि पीठों के गठन को लेकर किसी के पास मनमाने अधिकार न हों। मुख्य न्यायाधीश को अपने से आगे आकर ऐसी प्रक्रिया की तैयारी के लिए पहल करनी चाहिए ताकि भविष्य में पीठों के गठन में मनमानी की गुंजाइश रहने ही न पाए।

### बीमारी और इलाज ( नवभारत टाइम्स )

कांग्रेस की अगुआई में 7 राजनीतिक दलों ने राज्यसभा के सभापति वेंकैया नायडू को नोटिस देकर देश के मुख्य न्यायाधीश (सीजेआई) दीपक मिश्रा को हटाने की कार्यवाही अपनी तरफ से शुरू कर दी। अपीलीय अदालतों के अलग-अलग जजों को हटाने के मकसद से यह प्रक्रिया अभी तक 6 बार शुरू करवाई गई है, लेकिन मुकाम तक यह कभी नहीं पहुंची है। अलबत्ता प्रक्रिया शुरू होने के बाद 2 जजों ने इस्तीफा देकर इस प्रक्रिया को बंद जरूर करवाया है।

देश के मुख्य न्यायाधीश के खिलाफ इस प्रावधान का इस्तेमाल करने की नौबत अभी तक नहीं आई थी, वह भी इस बार आ गई। इस लिहाज से देश की न्याय व्यवस्था के लिए यह समय अभूतपूर्व बदनामी का है। विपक्ष द्वारा लगाए गए 5 आरोपों में 2 ऐसे हैं जो मुख्य न्यायाधीश के अतीत से जुड़े हैं। एक तो उस दौर से, जब चीफ जस्टिस तो क्या वह जज भी नहीं थे। इन बिंदुओं पर आज बात करने का आशय गड़े मुर्दे उखाड़ने जैसा ही लिया जाएगा। कोई यह भी कह सकता है कि ये आरोप अगर इतने ही गंभीर थे तो उन पर पहले ध्यान क्यों नहीं दिया गया? लेकिन हां, आरोप पत्र में निश्चय ही कुछ बिंदु ऐसे भी हैं जो बतौर सीजेआई दीपक मिश्रा के काम करने के ढंग से सीधे तौर पर जुड़े हैं। इनके बारे में लोगों की राय अलग-अलग हो सकती है, पर इनकी अहमियत से इनकार नहीं किया जा सकता।

उदाहरण के लिए, किस तरह के केस किन-किन खास बेंचों को सौंपे जा रहे हैं, इस मामले को लेकर सुप्रीम कोर्ट के अंदर सीनियर जजों के बीच संवादहीनता और अविश्वास इस हद तक बढ़ गया कि उनमें से 4 ने बाकायदा प्रेस कॉन्फ्रेंस करके देश के सामने इस विषय में अपनी नाराजगी जाहिर की। यह ऐतिहासिक घटना इस अंदेश को

देश के प्रधान न्यायाधीश मिश्रा के खिलाफ लगाए गए आरोपों का सावधानीपूर्वक जवाब तलाशने की आवश्यकता है। देश की न्यायपालिका के मुखिया को निंदा से परे होना चाहिए। ये आरोप आम जनता के बीच कोई छवि गढ़ें उससे पहले प्रधान न्यायाधीश इस मामले को खुद स्पष्ट कर सकते हैं। अगर ऐसा होता है तो यह देश की न्यायपालिका में उस जरूरी भरोसे को बहाल करेगा जो पिछले कुछ समय में तमाम वजहों से खंडित हुआ है। इसमें भी बहुत कम संदेह है कि विपक्ष का यह महाभियोग प्रस्ताव विफल रहेगा। यह भी स्पष्ट है कि विपक्ष को इस तरह आगे नहीं बढ़ना चाहिए था और उन्होंने यह कदम केवल राजनीतिक लाभ को देखते हुए ही उठाया है। यह बहुत खेद की बात है। नेताओं को न्यायपालिका की या फिर न्यायाधीशों की प्रतिष्ठा के साथ नहीं खेलना चाहिए। कांग्रेस के नेतृत्व में इस महाभियोग को आगे बढ़ा रहे विपक्ष को अच्छी तरह पता है कि आरोप अपर्याप्त हैं और प्रस्ताव सफल नहीं होगा। इससे पता चलता है कि उनका इरादा न्यायाधीश को शर्मिदा करना और उनकी प्रतिष्ठा को नुकसान पहुंचाने का है।

यह उच्च संवैधानिक विषय को लेकर निहायत कमजोर रुख है और इससे न्यायाधीश के बजाय विपक्ष की ही छवि और अधिक धूमिल होगी। जैसा कि इस समाचार पत्र ने पहले भी कहा था, देश की संवैधानिक व्यवस्था और हमारे संस्थान मौजूदा सरकार के कार्यकाल में बहुत अधिक प्रभावित हुए हैं। अब ऐसा लगता है कि विपक्ष भी इस विषय पर उतना ही लापरवाह है जितना कि सत्ता पक्ष। वह राजनीतिक लाभ हासिल करने या कहे न्यायाधीश के मनोनुकूल न साबित होने के चलते समूचे न्यायिक संस्थान को नुकसान पहुंचाना चाहता है।

विपक्ष ने जो उदाहरण तैयार किया है वह खतरनाक है। न्यायाधीशों को राजनीतिक हस्तक्षेप से मुक्त रहने देना चाहिए। उनकी स्वायत्तता की रक्षा करना जरूरी है। उदाहरण के लिए इन दिनों उच्च न्यायपालिका में न्यायाधीशों की नियुक्ति को लेकर जो असहमति व्याप्त है उसके मूल में भी न्यायिक स्वायत्तता की रक्षा ही विषय है। परंतु अगर कोई न्यायाधीश इस बात से भयभीत रहेगा कि उसके निर्णय यदि किसी राजनीतिक वर्ग को पसंद नहीं आए तो उसे महाभियोग की प्रक्रिया का सामना करना पड़ेगा तो न्यायिक स्वायत्तता की पूरी व्यवस्था को नुकसान पहुंचेगा। प्रधान न्यायाधीश को जहां खुलकर अपनी बात कहनी चाहिए और अपने खिलाफ लगाए गए पांचों आरोपों पर स्पष्टीकरण देना चाहिए, वहीं विपक्ष को भी इन आरोपों का जवाब देना होगा कि उसने अधिकारों के बंटवारे को कमजोर किया है और संविधान को भी नुकसान पहुंचाया है।

सही साबित करने के लिए काफी है कि सुप्रीम कोर्ट में सब कुछ ठीकठाक नहीं चल रहा। इस बिंदु पर आकर यह सवाल भी लाजमी हो जाता है कि क्या मौजूदा सीजेआई को हटा देने से देश की सर्वोच्च न्यायिक संस्था में नजर आ रही समस्याएं दूर हो जाएंगी? कल को नए मुख्य न्यायाधीश ने भी बेंचों को मुकदमों के बंटवारे के मामले में ठीक वही रवैया अपनाया तो यही इलाज क्या उसके साथ भी दोहराया जाएगा? जाहिर है, कुछ समय तक देश के मुख्य न्यायाधीश का पद संभालने वाले व्यक्ति का रहना या जाना उतनी बड़ी बात नहीं, जितनी सुप्रीम कोर्ट की साख बची रहना और इसके आड़े आने वाली गलतियों को ठीक किया जाना है।

विपक्ष ने मौजूदा सीजेआई के खिलाफ जो प्रक्रिया शुरू की है, उसका हथ्र चाहे जो भी हो, पर इस बड़े काम में उससे कोई मदद नहीं मिलनी। सुप्रीम कोर्ट की भीतरी कार्यप्रणाली को दुरुस्त करने का काम सरकार या विपक्ष की दखलंदाजी से नहीं, अंततः न्यायमूर्तियों की आपसी समझदारी से ही हो पाएगा।

### नाकाम महाभियोग के सबक ( अमर उजाला )

सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश के खिलाफ लाए गए महाभियोग प्रस्ताव के खारिज होने के बाद कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी को यह समझ आ जाए तो अच्छा कि इस मामले को तूल देने से उसे बदनामी के सिवाय और कुछ हासिल होने वाला नहीं है। यह महज दुर्योग नहीं हो सकता कि कांग्रेस के वकील सांसदों और चंद स्वतंत्र वकीलों के गुट को छोड़ दें तो अन्य सभी विधि विशेषज्ञ महाभियोग को बदनीयत से लैस बताने के साथ ही न्यायपालिका की गरिमा गिराने वाला कह रहे हैं। अगर फली एस नरीमन, सोली सोराबजी, राम जेठमलानी, हरीश साल्वे, केके वेणुगोपालन, के पारासरन, जैसे कानूनी जानकार इस नतीजे पर पहुंचे कि अधकचरा महाभियोग लाकर सुप्रीम कोर्ट की प्रतिष्ठा को चोट पहुंचाई गई तो इन सबको गलत अथवा सरकार समर्थक नहीं करार दिया जा सकता। इसलिए और भी नहीं, क्योंकि इनमें कई उस समय अटार्नी जनरल रहे हैं जब कांग्रेस सत्ता में थी। कांग्रेस नेतृत्व इसकी भी अनदेखी नहीं कर सकता कि उसके कई नेता एवं विधि विशेषज्ञ भी महाभियोग से सहमत नहीं। सुप्रीम कोर्ट के कुछ पूर्व न्यायाधीशों का भी यह कहना है कि मुख्य न्यायाधीश के खिलाफ महाभियोग लाने के ठोस आधार नहीं थे। ऐसे में यह मानने के अच्छे-भले कारण हैं कि कांग्रेस अध्यक्ष अपने वकील सांसदों के साथ-साथ वकीलों के उस गुट के बहकावे में आ गए जो सरकार के साथ-साथ सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश के प्रति एक तरह के बैर भाव से ग्रस्त है और जो किस्म-किस्म की जनहित याचिकाएं दायर करने में माहिर है।

यह एक तथ्य है कि वैचारिक तौर पर सरकार के अंध विरोध से ग्रस्त वकीलों का एक गुट फालतू की जनहित याचिकाएं थोक



## साख बनाम संदेह ( जनसत्ता )

आखिरकार उपराष्ट्रपति और राज्यसभा के सभापति वेंकैया नायडू ने कांग्रेस समेत सात विपक्षी दलों की तरफ से सर्वोच्च न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश के खिलाफ लाए गए महाभियोग प्रस्ताव को खारिज कर दिया। जिस तरह देश के कई जाने-माने संविधानविदों ने इस प्रस्ताव के खिलाफ अपनी राय जाहिर की थी, उसे देखते हुए उपराष्ट्रपति के निर्णय पर शायद ही किसी को हैरानी हुई हो। यों इस प्रस्ताव को विचार और बहस के लिए स्वीकार कर भी लिया जाता, तो इसका पारित हो पाना नाममुकिन था, क्योंकि संसद में इसे पारित कराने लायक संख्याबल विपक्ष के पास नहीं था। यही नहीं, तृणमूल कांग्रेस, द्रमुक और राजद जैसी पार्टियां महाभियोग के प्रस्ताव से सहमत नहीं थीं। खुद कांग्रेस के भीतर इस मामले में एक राय नहीं रही है। ऐसे में, प्रस्ताव लाने वाले दलों की रणनीतिक कमजोरी भी जाहिर हुई है। राज्यसभा के सभापति ने प्रस्ताव खारिज करने के पीछे कुल बाईस कारण बताए हैं। इनमें से मुख्य कारणों में एक यह है कि प्रस्ताव लाने वालों ने प्रधान न्यायाधीश के खिलाफ अपने आरोपों के समर्थन में कोई ठोस साक्ष्य और तथ्य पेश नहीं किए थे; इसके बजाय संदेहों और अटकलों को आधार बनाया था; ठोस साक्ष्यों और तथ्यों के बजाय 'ऐसा लगता है' और 'हो सकता है' जैसी शब्दावली का प्रयोग किया गया था।

ऐसे में प्रधान न्यायाधीश के खिलाफ जांच का आदेश देने से न्यायपालिका की साख को गंभीर चोट पहुंचती। प्रस्ताव में एक आरोप मुकदमों के आबंटन और उनकी सुनवाई के लिए जजों के चयन में मनमानी का था। चार वरिष्ठ जजों के संवाददाता सम्मेलन से यह विवाद पहले ही तूल पकड़ चुका था। लेकिन उपराष्ट्रपति ने अनेक कानूनविदों से विचार-विमर्श के बाद कहा है कि 'मास्टर ऑफ द रोस्टर' होने के कारण प्रधान न्यायाधीश को मुकदमों के आबंटन का अधिकार है। उन्होंने प्रस्ताव खारिज करते हुए यह भी जोड़ा है कि परंपरा के खिलाफ नोटिस का मसविदा सार्वजनिक करना गलत है; बारीकी से विचार किए बगैर महाभियोग से न्यायपालिका में भरोसा कम होता है।

सभापति ने अपने निर्णय में कहा है कि सात विपक्षी दलों के राज्यसभा के चौंसठ सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित नोटिस में प्रधान न्यायाधीश के खिलाफ लगाए आरोपों के समर्थन में पेश किए गए दस्तावेजों से कोई पर्याप्त साक्ष्य सामने नहीं आता है और संविधान के अनुच्छेद 124 (4) के तहत उन्हें महाभियोग के तहत हटाने का कोई मामला नहीं बनता है। दूसरी तरफ कांग्रेस ने उपराष्ट्रपति के निर्णय को जल्दबाजी में लिया गया निर्णय करार दिया है। कांग्रेस का कहना

भाव में दायर करता रहा है। यह गुट सरकार के साथ-साथ मुख्य न्यायाधीश से भी खुन्नस खाता है, इसका प्रमाण यह है कि उनकी पीठ का बहिष्कार करने की धमकी देने के साथ-साथ अदालती कार्यवाही के दौरान अभद्रता करने के प्रसंग किसी से छिपे नहीं। इसमें संदेह नहीं कि वकीलों के इस गुट को चार वरिष्ठ न्यायाधीशों की उस प्रेस कांफ्रेंस से और बल मिला जिसमें उन्होंने सुप्रीम कोर्ट के कामकाज को लेकर सवाल उठाए थे। यदि सुप्रीम कोर्ट खास एजेंडे वाली जनहित याचिकाएं दायर करने वाले वकीलों के गुट को केवल चेताने तक सीमित नहीं रहता तो शायद जो स्थिति बनी उससे बचा जा सकता था। इसका कोई मतलब नहीं कि न्यायपालिका को नीचा दिखाने और शासन को अस्थिर करने के इरादे से जनहित याचिकाएं दायर करने वालों को सिर्फ हिदायत देकर छोड़ दिया जाए। आज जरूरी केवल यह नहीं है कि जनहित के बहाने अपना स्वार्थ साधने वालों को बेनकाब किया जाए, बल्कि यह भी है कि न्यायाधीशों के खिलाफ महाभियोग की प्रक्रिया का प्रभावी विकल्प भी खोजा जाए। अब तक का अनुभव यही बताता है कि महाभियोग इतनी जटिल प्रक्रिया है कि उससे कुछ हासिल नहीं किया जा सकता। यह ठीक है कि राज्यसभा सभापति के फैसले के बाद संकीर्ण राजनीतिक इरादे से महाभियोग लाने वाले हतोत्साहित होंगे, लेकिन अगर कभी किसी न्यायाधीश का आचरण ऐसा हो कि उसे हटाना जरूरी हो जाए तो फिर देश के पास कोई ठोस उपाय होने ही चाहिए।

है कि संबंधित आरोपों के सबूत और अन्य दस्तावेज सीबीआई तथा अन्य जांच एजेंसियों के पास हैं; अगर नोटिस स्वीकार कर जांच के लिए समिति गठित की जाती, तो सबूत और गवाह पेश किए जाते।

बहरहाल, प्रस्ताव खारिज होने के बाद भी यह प्रकरण खत्म होने के आसार फिलहाल नहीं दिखते। कांग्रेस ने राज्यसभा के सभापति के निर्णय को असंवैधानिक बताते हुए सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती देने का इरादा जताया है। लेकिन इस पर सुनवाई कौन करेगा, इसका फैसला कैसे होगा, क्योंकि प्रधान न्यायाधीश ही तो मास्टर ऑफ द रोस्टर हैं। फिर, कांग्रेस कानूनी आधार क्या लाएगी, कौन-से उदाहरण पेश करेगी, क्योंकि प्रधान न्यायाधीश के खिलाफ महाभियोग प्रस्ताव पहले कभी नहीं लाया गया था। चाहे मुकदमों का आबंटन हो या जजों की नियुक्ति के लिए चली आ रही कोलेजियम प्रणाली, दोनों को आदर्श व्यवस्था नहीं कहा जा सकता। पर इन मसलों का सामना करने का तरीका यह नहीं हो सकता कि शक्तियों के दुरुपयोग की धारणा बना ली जाए। इस तरह के विवाद से किसी को कोई राजनीतिक लाभ हो या न हो, न्यायपालिका की साख और गरिमा को जरूर चोट पहुंचती है।

### क्या है मामला?

- सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा के खिलाफ विपक्ष द्वारा महाभियोग का प्रस्ताव लाया गया है। कांग्रेस की अगुवाई में 7 विपक्षी दलों ने राज्यसभा सभापति वेंकैया नायडू से मुलाकात कर उन्हें ये प्रस्ताव सौंपा है।
- राज्यसभा के 65 मौजूदा सांसदों ने मौजूदा चीफ जस्टिस दीपक मिश्रा के खिलाफ महाभियोग के प्रस्ताव पर दस्तखत कर दिए हैं। इसके अलावा 6 सांसदों के भी दस्तखत हैं मगर वो रिटायर हो चुके हैं। यह प्रस्ताव राज्यसभा के चेयरमैन यानी भारत के उपराष्ट्रपति के सामने पेश कर दिया गया है। इसी के साथ भारत की राजनीति एक चुनौतीपूर्ण दौर में पहुंच गई है।

### क्या है वे पांच कारण?

#### खराब आचरण

- विपक्ष ने सीजेआई के खिलाफ पहला आरोप खराब आचरण का लगाया है। कांग्रेस का आरोप है कि सीजेआई दीपक मिश्रा का व्यवहार उनके पद के मुताबिक नहीं है। कांग्रेस का कहना है कि जब से वो चीफ जस्टिस बने हैं तब से कई मौकों पर उनके काम करने के तरीके पर सवाल उठे हैं। कांग्रेस का आरोप है कि कई मामलों में वो सुप्रीम कोर्ट के बाकी जजों की राय तक नहीं लेते।

#### प्रसाद एजुकेशन ट्रस्ट से फायदा उठाना

- विपक्ष ने सीजेआई पर दूसरा आरोप प्रसाद एजुकेशन ट्रस्ट से फायदा उठाने का लगाया है। विपक्ष का आरोप है कि सीजेआई दीपक मिश्रा ने इस मामले में दाखिल सभी याचिकाओं को प्रशासनिक और न्यायिक परिप्रेक्ष्य में प्रभावित किया। क्योंकि, वह प्रसाद एजुकेशन ट्रस्ट से जुड़े सभी मामलों की सुनवाई करने वाली बेंच की अगुवाई कर रहे थे। ऐसा करके उन्होंने जजों के आचार संहिता और आदर्शों की अवहेलना की।

#### रोस्टर में मनमाने तरीके से बदलाव

- विपक्ष ने सीजेआई दीपक मिश्रा पर सुप्रीम कोर्ट के रोस्टर में मनमाने तरीके से बदलाव करने का आरोप लगाया है। विपक्ष का कहना है कि सीजेआई ने कई अहम केसों को दूसरे बेंच से बिना कोई वाजिब कारण बताए दूसरे बेंच में शिफ्ट कर दिया।

कई अहम मामले जो दूसरी बेंच में विचाराधीन थे, 'मास्टर ऑफ रोस्टर' के तहत सीजेआई ने उन मामलों को भी अपनी बेंच में ट्रांसफर कर लिया।

#### अहम केसों के बंटवारे में भेदभाव का आरोप

- विपक्ष ने सीजेआई दीपक मिश्रा पर अहम केसों के बंटवारे में भेदभाव का आरोप भी लगाया है। दरअसल, सीबीआई स्पेशल कोर्ट के जज बीएच लोया का केस सीजेआई ने सीनियर जजों के होते हुए जूनियर जज अरुण मिश्रा की बेंच को दे दिया था। जनवरी में सुप्रीम कोर्ट के चार सीनियर जजों ने जब न्यायिक व्यवस्था को लेकर प्रेस कॉन्फ्रेंस की थी, तब इस मामले को प्रमुखता से उठाया भी था।

#### जमीन अधिग्रहण का आरोप

- विपक्ष ने सीजेआई पर पांचवा आरोप जमीन अधिग्रहण का लगाया है। विपक्ष के मुताबिक, जस्टिस दीपक मिश्रा ने 1985 में एडवोकेट रहते हुए फर्जी एफिडेविट दिखाकर जमीन का अधिग्रहण किया था। एडीएम के आवंटन रद्द करने के बावजूद ऐसा किया गया था। हालांकि, साल 2012 में सुप्रीम कोर्ट पहुंचने के बाद उन्होंने जमीन सरेंडर कर दी थी।

### महाभियोग लाने का नियम

- महाभियोग की प्रक्रिया जटिल है। संसद के वर्तमान स्वरूप को देखते हुए, विपक्ष इस प्रक्रिया को पहले चरण से आगे ले जाने में सक्षम नहीं होगा। इस प्रक्रिया में अनुच्छेद 124 (2), 124 (4), 124 (5) और जजेज इन्क्वायरी एक्ट, 1968 की अहम भूमिका होती है। इस प्रकार, सबसे पहले महाभियोग के प्रस्ताव का नोटिस लोकसभा के 100 सदस्यों या राज्यसभा के 50 सदस्यों द्वारा दी जाती है।
- राज्यसभा में विपक्ष के पास इसके लिए पर्याप्त संख्या है। इसके बाद, लोकसभाध्यक्ष या राज्यसभा के सभापति इस प्रस्ताव को ठुकरा या स्वीकार कर सकते हैं। अगर किसी तरह से इन चरणों को पार कर लिया गया, जिसकी संभावना क्षीण है, तब एक समिति का गठन किया जायेगा जिसमें सुप्रीम कोर्ट के जज, किसी एक हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश और एक नामचीन जूरिस्ट शामिल होंगे।

- यह समिति संबंधित जज, इस मामले में भारत के मुख्य न्यायाधीश, के खिलाफ एक ठोस आरोपपत्र तैयार करेगी। यह समिति एक बेंच के तौर पर कार्य करेगी और जरूरी लगने पर गवाहों से पूछताछ करेगी। अपनी कवायद पूरी करने के बाद समिति अपनी रिपोर्ट संसद को सौंपेगी। अगर समिति महाभियोग प्रस्ताव को मान लेती है, तो उसे दोनों सदनों में दो-तिहाई बहुमत से पारित होना जरूरी है। अभी सभी विपक्ष दलों को मिलाकर भी इतना बहुमत नहीं है। इसके आलावा, समिति द्वारा जज को दोषी मान लिए जाने के बावजूद संसद उसके खिलाफ कार्रवाई नहीं करने का विकल्प चुन सकती है।
- अगर इस चरण को भी पार कर लिया जाता है, जोकि पिछले मामलों में नहीं हुआ, तो राष्ट्रपति से उस जज को बर्खास्त करने की सिफारिश की जायेगी। राष्ट्रपति ऐसा तभी करेंगे जब संसद के दोनों सदनों द्वारा उस जज को बर्खास्त करने के पक्ष में प्रस्ताव पारित किया गया हो। भारत में महाभियोग का सामना करने वाले जजों की सूची ज्यादा लंबी नहीं है। इस सूची पर निगाह डालने से यह साफ होता है कि यहां महाभियोग की प्रक्रिया कभी भी आखिरी मुकाम तक नहीं पहुंची, लेकिन इसने जजों को इस्तीफा देने के लिए मजबूर जरूर कर दिया।

#### इन 6 न्यायाधीशों पर भी चल चुका है महाभियोग

- 2011 में कलकत्ता हाईकोर्ट के न्यायाधीश सौमित्र सेन का मामला महाभियोग के काफी करीब पहुंचा। श्री सेन पहले ऐसे जज बने जिनके खिलाफ राज्यसभा ने एक प्रस्ताव पारित कर भ्रष्टाचार का आरोप लगाया। लोकसभा द्वारा इस प्रक्रिया को पूरा करने के पहले ही उन्होंने इस्तीफा दे दिया।
- सिक्किम हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश पी. डी. दिनाकरण ने भ्रष्टाचार का आरोप में एक न्यायिक जांच समिति का सामना

किया। जुलाई, 2011 में संसद द्वारा उनके खिलाफ महाभियोग की प्रक्रिया शुरू किये जाने से पहले ही उन्होंने इस्तीफा दे दिया।

- गुजरात हाईकोर्ट के न्यायाधीश जे.बी. पर्दीवाला के खिलाफ 2015 में राज्यसभा के 58 सदस्यों ने “आरक्षण के मुद्दे पर उनकी आपत्तिजनक टिप्पणी” के लिए महाभियोग का नोटिस दिया। सांसदों द्वारा राज्यसभा के तत्कालीन सभापति और उपराष्ट्रपति हामिद अंसारी को नोटिस सौंपे जाने के कुछ घंटों के भीतर ही न्यायमूर्ति जे.बी. पर्दीवाला ने अपनी टिप्पणी वापस ली।
- पंजाब और हरियाणा हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश वी रामास्वामी पहले ऐसे जज बने जिनके खिलाफ 1993 में लोकसभा के माध्यम से महाभियोग की प्रक्रिया शुरू की गयी। सदन में अनुपस्थित रहने के कांग्रेस पार्टी के निर्णय की वजह से महाभियोग के प्रस्ताव को पारित होने के लिए आवश्यक दो तिहाई बहुमत नहीं जुट सका।
- आंध्र और तेलंगाना उच्च न्यायालय के न्यायाधीश नागार्जुन रेड्डी के खिलाफ 2016 में एक दलित न्यायाधीश को प्रताड़ित करने के लिये पद का दुरुपयोग करने का आरोप था। जिसके चलते राज्यसभा के 61 सदस्यों ने उनके खिलाफ महाभियोग चलाने के लिये एक याचिका दी थी। बाद में राज्यभा के 54 सदस्यों में से उन 9 ने अपना हस्ताक्षर वापस ले लिया था, जिन्होंने न्यायमूर्ति रेड्डी के खिलाफ कार्यवाही शुरू करने का प्रस्ताव दिया था।
- मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति एसके गंगेले के खिलाफ वर्ष 2014 में यौन उत्पीड़न का आरोप लगाया गया था। जिसके चलते राज्यसभा के 58 सदस्यों ने उनके खिलाफ महाभियोग चलाने के लिये एक याचिका दी थी।

\* \* \*

#### संभावित प्रश्न

प्रश्न. देश के मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा के खिलाफ संसद में महाभियोग प्रस्ताव की प्रासंगिकता को स्पष्ट करते हुए न्यायालय की गरिमा और अखंडता को कायम रखने हेतु सरकार द्वारा क्या अपेक्षित कदम उठाये जाने चाहिए? चर्चा कीजिये। (250 शब्द)

MD.: Niraj Singh

I  
A  
S



P  
C  
S

You deserve the best...

# Special Notice

for All UPSC Students

प्रिय विद्यार्थियों,

सिविल सेवा प्रारंभिक परीक्षा-2018 में

सम्मिलित होने वाले विद्यार्थियों के लिए **GS World** एक **Full Test (GS+CSAT)** आयोजित करा रहा है। यह **Test** पूर्णतः निःशुल्क होगा। आपसे आशा है कि आप इस टेस्ट में शामिल होकर प्रारंभिक परीक्षा से पूर्व अपनी तैयारी का अंकन स्वयं कर सकते हैं।

नोट:- इस टेस्ट में शामिल होने के लिए आप अपना **UPSC Roll No./Registration No.** **GS World Head Office** में जमा कर **Admit Card** प्राप्त करें।

दिनांक:- **13** May

**GS Paper-I** — 10 am to 12 pm

**GS Paper-II** — 2 pm to 4 pm

Thanks & Regards  
GS World, Delhi

Head Office : 629, Ground Floor, Main Road, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi

Visit us at : [www.gsworldias.com](http://www.gsworldias.com)

**011-27658013, 9868365322**

Email : [gsworldias@gmail.com](mailto:gsworldias@gmail.com)